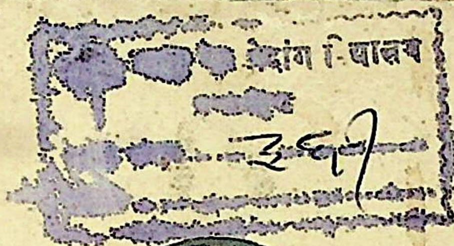
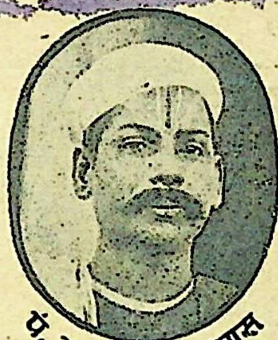




महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचितम्

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

(पण्डित पछार)



कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

3 3/6/22

महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासविरचितम्

(पण्डितपछा:ाभिधम्)

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

काशिकहिन्दुविश्वविद्यालयीये

भारतीमहाविद्यालये

भारतीयदर्शनधर्मशास्त्रविभागेऽध्यापकेन

श्रीकेदारनाथमिश्रेण

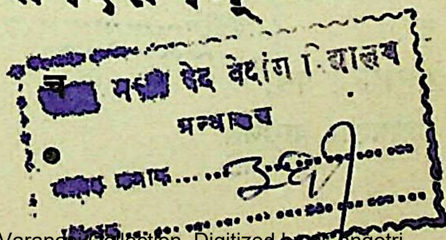
गुप्ताशुद्धिप्रकाशिकाख्यया राष्ट्रभाषाव्याख्यया सनाथीकृत्य

सम्पादितम्

श्रीकेदारनाथमिश्रकृतराष्ट्रभाषाव्याख्यासहितम्

कूट-काव्य-सङ्कलनरूपम्

व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्



प्रकाशकः
प्रणेतृ–पौत्रः श्रीराधाकुमारव्यास-तनयः
श्रीकृष्णकुमारव्यासः

प्राप्तिस्थानम्
व्यास पुस्तकालयः
(सोमेश्वर, गली)
डी० १६/१४ मानमन्दिरम्
वाराणसी।

संशोधितं परिवर्द्धितञ्च अष्टमं संस्करणम्
विक्रमसंवत् २०३४
रूप्यकत्रयम्

मुद्रकः
गौरीशंकर प्रेस,
मध्यमेश्वर, वाराणसी।

सम्पादकीय

संस्कृत के पण्डित पद के शुद्ध प्रयोग पर अत्यधिक बल देते आये हैं और व्याकरणशास्त्र का मुख्य प्रयोजन शब्दापशब्दविवेक या शुद्ध पदों के सम्यक् प्रयोग का ज्ञान प्राप्त करना ही मानते आये हैं। कई बार ऐसा होता है कि अशुद्ध प्रयोग भी शुद्ध से प्रतीत होते हैं और भ्रमवश लोग उन्हें शुद्ध समझ लेते हैं, फलतः वे प्रचलित हो जाते हैं। आज की हिन्दी में प्रचलित 'उपरोक्त,' 'एकत्रित' 'लब्धप्रतिष्ठित' आदि शब्द इसके उदाहरण हैं। अशुद्ध प्रयोगों के प्रचलन को रोकने तथा अशुद्ध पदों के प्रयोग से बचने के लिये ऐसे प्रयोगों का शुद्ध रूप जानना आवश्यक है। इसी आवश्यकता का अनुभव कर आज से प्रायः ८७ वर्ष पूर्व (वि० सं० १९३७ में) घटिकाशतक साहित्याचार्य श्रीमदम्बिकादत्तव्यास ने दश अशुद्धिघटित पद्यों और एक सौ ग्यारह वाक्यों में व्याकरण पढ़े-लिखे लोगों से भी हो जानेवाली भूलों का संकलन कर उसे **गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्** (**या पण्डितपञ्छार**) नाम से प्रकाशित किया था। प्रत्येक पद्य या वाक्य में, साधारणतया पकड़ में न आने वाली कुछ अशुद्धियों का सन्निवेश होने के कारण यह पुस्तक व्याकरणशास्त्र के अभ्यास और उसकी मार्मिक त्रुटियों के ज्ञान का अनुपम साधन सिद्ध हुई है। इसकी उपादेयता को दृष्टि में रखकर **वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय** ने इसे उत्तरमध्यमा परीक्षा के लिये स्वीकृत किया है।

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् के प्रस्तुत संस्करण में टीकाकार द्वारा दस नवीन अशुद्धिघटित पद्यों की रचना कर उन्हें सन्निविष्ट कर पद्यों की संख्या बीस कर दी गई है। वाक्यों की संख्या भी एक सौ ग्यारह से बढ़ा कर एक सौ तीस कर दी गई है। राष्ट्रभाषामें उपनिबद्ध सरल टीका में अशुद्धियों का निर्देश कर उनकी सुव्यवस्थित व्याख्या कर शुद्ध प्रयोग दिया गया है। सूत्र, वार्तिक, महाभाष्य के वाक्य, कोषवाक्य एवं अन्य महत्त्वपूर्ण शब्द काले टाइप में छापे गये हैं। सूत्रों का पाणिनीय अष्टाध्यायी का क्रमाङ्क दिया गया है। वार्तिक या महाभाष्यवचन जिस सूत्र पर है उस का अङ्क (वार्तिकादि उद्धृत करने के बाद) कोष्ठक में दे दिया गया है। पुस्तक में प्रयुक्त संकेत अ० को० का तात्पर्य **अमरकोष** से, तथा ए० को० का तात्पर्य **एकाक्षरीकोष** से है।

पुस्तक के व्युत्पत्तिप्रदर्शनम् नामक दूसरे खण्ड में विभिन्न ग्रन्थों से संकलित कर कुछ कूट पद्य दिये गए हैं। काव्यशास्त्र के मर्मज्ञों ने रस का प्रतिवन्धक होने के कारण कूटकाव्य को अधमकाव्य भले ही माना हो, प्रतिभा के विकास और व्युत्पत्तिप्रदर्शन की दृष्टि से ये महत्त्वपूर्ण अवश्य हैं। सरल हिन्दी अनुवाद और व्याख्या द्वारा इन पद्यों की ग्रन्थियाँ सुगम बना दी गई हैं। इस संस्करण में कुछ नये पद्य सन्निविष्ट किये हैं। हम उन सभी विद्वानों और प्रकाशकों के आभारी हैं जिनकी कृतियों से यह चयन किया गया है।

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय में प्राचीन व्याकरण एवं दर्शन विभाग के अध्यक्ष आचार्य रामप्रसाद त्रिपाठी ने इस संस्करण को प्रस्तुत करने में हमारा मार्ग निर्देशन कर हमें अनुगृहीत किया है। हम उनके कृतज्ञतापाश में बँधे रहने में ही अपने को धन्य समझते हैं। दार्शनिकसार्वभौम स्वर्गीय गोस्वामी दामोदरलालजी के निर्देशन में श्री जितेन्द्रियाचार्य द्वारा प्रकाशित गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम् के संस्करण का हमने पूरा उपयोग किया है। श्रीजितेन्द्रियाचार्य की मुझ पर कृपा रही है और प्रस्तुत संस्करण का प्रूफ-संशोधन उन्होंने ही किया है। एतदर्थ हम उनके आभारी हैं।

पुस्तक की पाण्डुलिपि तैयार करने का सारा श्रेय संस्कृतानुरागिणी धर्मपत्नी श्रीमती स्नेहलता मिश्र एम्० ए० को है। उनकी प्रेरणा और सहायता के कारण ही 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्' इस संशोधित और परिवर्द्धित रूप में प्रकाशित हो सकी है। एतदर्थ हम उनके चिर कृतज्ञ रहेंगे।

आशा है इस पुस्तक का यह सर्वाङ्ग-सुन्दर परिवर्द्धित संस्करण परीक्षार्थियों, व्युत्पित्सु विद्यार्थियों एवं सहृदय रसिकों के लिये उपादेय सिद्ध होगा तथा वे इसे और भी अधिक अपना कर हमारे परिश्रम को सफल करेंगे।

भारती महाविद्यालय
काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
१।१।१९६८

विद्वद्वशंवद
केदारनाथ मिश्र

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शन के प्रणेता

पं० अम्बिकादत्त व्यास

(संक्षिप्त परिचय)

पिता—पं० दुर्गादत्त गौड़ 'दत्त', जन्म—चैत्र शुक्ल अष्टमी वि० सं० १९१५ को जयपुर के सिलावटों के मुहल्ले (ननिहाल) में। अक्षरारम्भ—वि० सं० १९२० काशी में।

१९२५ प्रस्तार दीपक (सर्वप्रथम रचना) का प्रणयन प्रारंभ। १९२५–१९२७, संस्कृत में गणेशशतक और हिन्दी में शिवविवाह की रचना, सरस्वती-तन्त्र काव्य, समस्यापूर्ति आदि का अभ्यास। १९२८, विवाह।

१९३१ माँ का देहावसान। १९३२ गवर्नमेण्ट संस्कृत कालेज बनारस में प्रवेश, अंग्रेजी और बंगला का अध्ययन, श्रीमद्भागवतादि की कथा, भाषण और शास्त्रार्थ का अभ्यास। १९३४ सांख्यसागरसुधा, पातञ्जलप्रतिविम्ब और सामवतम् की रचना प्रारम्भ, ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा के लेखाध्यक्ष, पण्डितसभा में स्वामी विशुद्धानन्द से 'व्यास' उपाधि की प्राप्ति।

१९३५–१९३६ तीन हिन्दी और दो संस्कृत पुस्तकों की रचना। १९३७ पिता का देहावसान। सामवतम् नाटक की पूर्ति। गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्, समस्यापूर्तिसर्वस्व तथा दो हिन्दी पुस्तकों की रचना, गवर्नमेन्ट संस्कृत कालेज बनारस से साहित्याचार्य उपाधि की प्राप्ति। १९३८ काशी ब्रह्मामृतवर्षिणी सभा से 'घटिकाशत' उपाधि प्राप्ति। १९३९ द्रव्यस्तोत्र तथा हिन्दी की चार पुस्तकों का प्रणयन। १९४० मधुवनी संस्कृत स्कूल के अध्यक्ष, धार्मिक आन्दोलनों में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ, पीयूषप्रवाह पत्रिका का सम्पादन, और चार हिन्दी पुस्तकों की रचना। १९४१–१९४२ में 'दुःखद्रुमकुठारः' तथा छह हिन्दी पुस्तकों (दयानन्दमतमूलोच्छेदादि) की रचना। १९४३ मधुवनी

संस्कृत स्कूल से त्यागपत्र, मुजफ्फरपुर जिला-स्कूल के अध्यक्ष, धर्मसभा, 'सुनीति-संचारिणी सभा' की स्थापना, 'सुकवि-सतसई' आदि सात पुस्तकों की रचना। १९४४ भागलपुर जिला-स्कूल के अध्यक्ष, 'विहार-संस्कृत-संजीवन' का स्थापना, रत्नाष्टक और कथाकुसुम तथा हिन्दी में विहारी–विहार, मूर्तिपूजा आदि ग्रन्थों की रचना। १९४५ मिथिलानरेश से सम्मान प्राप्ति, सनातन-धर्म महामण्डल दिल्ली से स्वर्णपदक सहित 'विहारभूषण' उपाधि प्राप्ति, शिवराजविजय का रचना प्रारम्भ, अन्य छह हिन्दी-संस्कृत पुस्तकों की रचना। १९४६ से १९४७ तक छह पुस्तकों की रचना। १९५० शिवराजविजय की पूर्ति, गद्यमीमांसा, सहस्रनाम रामायण तथा पाँच हिन्दी पुस्तकों की रचना। १९५१ अवतारमीमांसा आदि चार हिन्दी ग्रन्थों की रचना तथा कांकरोली के वल्लभकुलावतंस गोस्वामी श्री बालकृष्णलाल जी महाराज से स्वर्णपदक सहित 'भारतरत्न' उपाधि की प्राप्ति। १९५२–१९५४ छोटी-छोटी पाँच पुस्तकों का प्रणयन। इस प्रकार १९२५ से १९५४ तक, ७८ ग्रंथों की रचना, 'महाकवि' सम्मान की प्राप्ति।

अयोध्यानरेश से स्वर्णपदक सहित 'शतावधान' उपाधि की प्राप्ति, बम्बई की महासभा में वल्लभकुलावतंस गोस्वामी घनश्यामलाल से स्वर्णपदक सहित 'भारतभूषण' उपाधि की प्राप्ति।

देहावसान—मार्गशीर्ष कृष्ण त्रयोदशी, सोमवार वि० सं० १९५७

नोट—व्यासजी के कुछ ग्रन्थ नष्ट हो गये हैं, शेष उनके पौत्र श्री कृष्णकुमार व्यास (व्यास पुस्तकालय डी० १६।१४ मानमन्दिर, काशी) से मिल सकते हैं।

निवेदन

ऐसे ऐसे लेख तो अनेक दीख पड़ते हैं जिनमें किसी में क्रिया गुप्त हो, किसी में कर्म गुप्त हो, पर ऐसे लेख नहीं देखने में आते जिनमें कुछ अशुद्धि हो और गुप्त हो। सच पूछिये तो क्रिया गुप्तादि उतनी व्युत्पत्ति की अपेक्षा नहीं रखते जितनी अशुद्धि गुप्त। जिसको उणादि और धातु के विभिन्न प्रयोगों में अभ्यास है, वह क्रिया-गुप्तादि का मर्म समझ लेगा, पर अशुद्धिगुप्त को समझने के लिए तो सच्ची व्युत्पत्ति चाहिये। फिर यह भी है कि क्रिया आदि न बूझ सकने से पाण्डित्य की उतनी हानि नहीं है जितनी अशुद्ध बोलने और अशुद्ध को शुद्ध समझने में है। इन दिनों भी स्थान-स्थान में सहस्रों ही छात्र पढ़ते हैं और उनके अध्यापक लोग फांकी और खर्रों के मारे उनके पेट में पानी-पानी कर देते हैं, पर जिस सूत्र पर छह घण्टे शास्त्रार्थ करने का सामर्थ्य उनको हो जाता है, उसी सूत्र के उदाहरण प्रायः स्वयं भी अशुद्ध बोलते हैं और दूसरे अशुद्ध बोलें तब तो खटके ही क्यों ? कुछ तो संस्कृत भाषा ही ऐसी दुरूह है कि बड़े बड़ों को भी भरमा देती है, पर प्रधान बात यही है कि इन दिनों पठन-पाठन ऐसा नष्ट हो रहा है कि जिन छात्रों की जिह्वा पर व्याकरण नाचता है वे भी 'क्या खाके आये हैं' यह भी सुन्दर शुद्ध संस्कृत में नहीं कह सकते और अपने मित्र को चार पंक्ति में भी लिख कर अपना अभिप्राय नहीं प्रकट कर सकते।

जो कुछ हो—

इस छोटे से प्रबन्ध में संस्कृत भाषा के कुछ वाक्य हैं और प्रत्येक में कुछ अशुद्धियाँ हैं, छात्रों को उचित है कि जहाँ तक हो सके अपने से उन अशुद्धियों को ढूँढ़े, नहीं तो अपने गुरुजी से पूछें, और गुरु लोगों को भी उचित है कि छात्रों से व्युत्पत्ति सम्बन्धी अभ्यास कराते रहें।

वैयाकरण लोग कटकटा के कमर बाँधें तो संसार के सब अपशब्दों को भी शुद्ध कर ले सकते हैं। जैसे कहावत प्रसिद्ध है कि "उणादि का प्रत्यय आया डलक, डियाँ, डोलना, मा धातु से प्रसिद्ध हुआ मलक, मियाँ मोलना।" पर हमें विश्वास है कि हमारे इष्ट-मित्र लोग इस अजीर्ण पण्डिताई का प्रच्छर्दन न करेंगे और हमारे तात्पर्य पर ध्यान देंगे।

यह क्षुद्र ग्रन्थ एक बार संवत् १९३७ में छपा था, छात्र और पण्डितों के आग्रह से फिर प्रकाशित करना पड़ा।

वैशाख ३०, सं० १९५० | विद्वज्जनकिङ्कर
भागलपुर | अम्बिकादत्त व्यास

---

* श्रीः *

महाकविश्रीमदम्बिकादत्तव्यासप्रणीतम्

गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनम्

श्लोकाः

त्वयि त्रातरि भोः कृष्ण! दुःखं नोऽत्रास्ति किञ्चन।
इयं सहप्रणतिना कृता ते चरणेऽञ्जलिः ॥ १ ॥

---

* देव्यै नमः *

अविद्यान्धकारं समुत्सारयन्ती
गिरां देवताऽन्वेति यस्य प्रसादम्।
गुरुं ज्ञानदं भक्तिभावाभिभूतो
नमत्कन्धरो नौमि चन्द्रार्धमौलिम् ॥ १ ॥

प्राग्वेदान्तविरुद्धमेव सुगतैराभाषितं दर्शनम्
मन्वानैर्बुधमानिभिर्मततरून् संस्थापितान्मूलतः।
स्वीयालोचनवात्यया प्रबलया योन्मूलयामास ताम्
श्रीमच्चन्द्रधरस्य तर्कनिशितां प्रज्ञां नमामो गुरोः ॥ २ ॥

अशुद्धीर्दर्शयिष्यामि गुप्ताशुद्धिप्रदर्शने।
केदारनाथमिश्रोऽहं छात्रलाभाय भाषया ॥ ३ ॥

१. प्रतिषेधार्थक नो शब्द चादिगण में पठित होने से निपातसंज्ञक है अतः 'ओत्' १।१।१५ सूत्र से इसकी प्रगृह्यसंज्ञा हो जायगी और 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' ६।१।१२५ सूत्र से प्रकृतिभाव होकर पूर्वरूपसन्धि के अभाव में नो अत्रास्ति यह शुद्ध रूप होगा।

हितैषां जगतो धत्सि लक्ष्मी ते पादपीडिका।
नित्यस्ते मे च सम्बन्धो पिता त्वं ते सुतोऽस्म्यहम् ॥ २ ॥

अञ्जलि शब्द पुंलिङ्ग ('तौ युतावञ्जलिः पुमान्' अमरकोष ६४९) है, अतः "या विशेष्येषु दृश्यन्ते लिङ्गसंख्याविभक्तयः। प्रायस्ता एव कर्तव्याः समानार्थे विशेषणे ॥" इस नियम के अनुसार इयम् के स्थान पर अयम् और कृताः के स्थान पर कृतः होना चाहिये। प्रणति शब्द क्तिन्नन्त होने से ('स्त्रियां क्तिन्' ३ । ३ । ९४) स्त्रीलिङ्ग है, उसका तृतीया एकवचन में रूप प्रणत्या होगा, और शुद्ध प्रयोग अयं सह प्रणत्या कृतः होगा ॥ १ ॥

२. 'इच्छा' ३ । ३ । १०१ सूत्र से निपातन होकर हितेच्छां शुद्ध रूप होगा।

धा धातु से आत्मनेपद में लट् लकार के मध्यमपुरुष एकवचन में धत्से यह शुद्ध रूप होगा।

लक्ष्मी शब्द अङ्यन्त है, अतः सु का लोप नहीं होगा। अवीतन्त्री-तरीलक्ष्मीधीह्रीश्रीणामुणादिषु । सप्तस्त्रीलिङ्गशब्दानां न सु-लोपः कदाचन ॥' अतः लक्ष्मीस्ते यह शुद्ध रूप होगा।

'कृदिकारादक्तिनः' इस गणसूत्र (४ । १ । ४५) से विकल्प में ङीप् होकर 'ङ्याप् प्रातिपदिकात्' ६ । १ । ६८ से सु का लोप होकर लक्ष्मी रूप भी होता है। इसीलिये कहा है, 'वातप्रमी श्री लक्ष्मीति पक्षे ङ्यन्ताः सुसाधवः।' द्विरूपकोष में भी 'लक्ष्मीर्लक्ष्मी हरिप्रिया'—ऐसा उल्लेख होने से दोनों रूपों को मान्यता दी गई है।

तव मम को ते और मे आदेश च के योग में नहीं होते—'न चवाहाऽहैवयुक्ते' ८ । १ । २४ । अतः यहाँ तव और मम ही होगा, ते और मे नहीं।

पकार हश् प्रत्याहार में नहीं आता अतः 'हशि च' ६ । १ । ११४ सूत्र की प्रवृत्ति न होने पर उत्व के अभाव में विसर्गान्त शब्द सम्बन्धः ही शुद्ध रूप होगा ॥ २ ॥

तन्त्री करे यस्य सस्त्वां सदा गायति नारदः ।
ऋषिभिर्महिमा दिव्या ते सदा ब्रूयते मुदा ॥ ३ ॥
यस्य ध्वजायां गरुडो भुजायां स्वर्णकङ्कणः ।
कण्ठे च कौस्तुभं भाति स मय्यनुगृहिष्यति ॥ ४ ॥

---

३. तन्त्री शब्द अङ्यन्त है अतः सु का लोप न होगा और विसर्गान्त तन्त्रीः रूप ही शुद्ध होगा ।

सः के बाद हलादि त्वां शब्द के होने से 'एतत्तदोः सुलोपोऽको-रनञ्समासे हलि' ६ । १ । १३२ सूत्र से सु का लोप होकर स त्वां यह शुद्ध रूप होगा ।

महिमन् शब्द इमनिच् प्रत्ययान्त 'पृथ्वादिभ्य इमनिज्वा' ५ । १ । १२२ पुंलिङ्ग है, अतः उसका विशेषण भी पुंलिङ्ग होगा और शुद्ध रूप दिव्यः होगा ।

'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' ८ । १ । १८ सूत्र से पादादि में आने वाले तव के ते आदेश का निषेध होकर तव यह शुद्ध रूप होगा ।

ब्रू धातु को आर्धधातुक में ब्रुवो वचिः' २ । ४ । ५३ सूत्र से वचि आदेश हो जायगा और शुद्ध रूप उच्यते होगा ॥ ३ ॥

४. ध्वज शब्द स्त्रीलिङ्ग नहीं है ('केतनं ध्वजमस्त्रियाम्' अमरकोष ८६५) । अतः ध्वजायां अशुद्ध है, सप्तमी एकवचन का रूप ध्वजे होगा । भुज शब्द पुंलिङ्ग है (भुजबाहू प्रवेष्टो दोः' अमरकोष ६४४) । अतः सप्तमी एकवचन का रूप भुजे होगा ।

कङ्कण शब्द नपुंसकलिङ्ग है ('कङ्कणं करभूषणम्' अमरकोष ६७२) । अतः शुद्ध पाठ स्वर्णकङ्कणम् होगा ।

कौस्तुभ शुब्द पुंलिङ्ग है ('कौस्तुभो मणिः' अमरकोष ३१) । अतः शुद्ध पाठ कौस्तुभो भाति होगा ।

त्वां याचितं मया यद्यद् देहि तन्मां लघु प्रभो।
हे नाथ! मेऽखिलान् पापान् क्षमस्व जगदीश्वर ॥ ५ ॥
जगत्यस्मिन् महद्घोरे गुरौ दुःखप्रदातरि।
निरालम्बोऽस्मि पतितः क्वास्ति ते चरणं तरिः ॥ ६ ॥
त्वमेवात्र समागच्छ मा वा त्वन्निकटे नय।
अहं देव त एवास्मि दुःखसघात्प्रमोचय ॥ ७ ॥

'ग्रहोऽलिटि दीर्घः' ७। २। ३७ सूत्र से हि के दीर्घ हो जाने पर सम्प्रसारण के अभाव में अनुग्रहीष्यति यह शुद्ध रूप होगा ॥ ४ ॥

५. द्विकर्मक याच् धातु दुह्यादि धातुओं के अन्तर्गत आती है, अतः प्रत्यय अप्रधान कर्म में ही होगा और शुद्ध रूप 'त्वं याचितो मया' होगा। साथ ही सम्प्रदान का प्रसङ्ग होने से द्वितीया के स्थान पर चतुर्थी होगी और 'देहि तत् मह्यं लघु' यह शुद्ध रूप होगा। यहाँ 'नाथ' शब्द आमन्त्रितसंज्ञक है अतः 'आमन्त्रितं पूर्वमविद्यमानवत्' ८। १। ७२ से वह अविद्यमान के तुल्य हो जायगा। इस दशा में 'मम' को होने वाले 'मे' आदेश का 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' ८। १। १८ से (पादादि में होने के कारण) निषेध होकर मम यह शुद्ध रूप होगा। हे शब्द को पादादि में मानकर आदेशसिद्धि कर सकना भी सम्भव नहीं है, क्योंकि वह भी सम्बोधन प्रथमान्त होने से आमन्त्रित संज्ञक माना जायगा, अतः अविद्यमानवत् ही है।

पाप शब्द नपुंसकलिङ्ग है ('पापं ।कल्विषकल्मषम्' अमरकोष १४५)। अतः अखिलं पापम् या अखिलानि पापानि पाठ शुद्ध होगा ॥ ५ ॥

६. 'आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः' ६। ३। ४६ सूत्र से आत्व होकर महाघोरे यह शुद्ध रूप होगा ॥ ६ ॥

७. पादादि में होने वाले माम् के मा आदेश का 'अनुदात्तं सर्वमपादादौ' ८। १। १८ सूत्र से निषेध होकर माम् यह शुद्ध रूप होगा।

न कोऽपि मित्रस्त्वदृते वो गापयति नारदम् ।
त्वमेव प्रीतिपात्रोऽसि मा भैः कस्ते विना वदेत् ॥ ८ ॥
जाजप्यन्ते नाम तव सर्वोपनिषदः सदा ।
स्मृतीतिहासास्तेष्वेव चाचर्यन्ते बुधोदिताः ॥ ९ ॥

एव के योग में तव को ते आदेश नहीं होता ('न चवाहाऽहैवयुक्ते' ८।१।२४) अतः तवैवास्मि यह शुद्ध रूप होगा ॥ ७ ॥

८. सुहृद्वाची मित्र शब्द नपुंसकलिङ्ग है ('अथ मित्रं सखा सुहृत्' अमरकोष ७७७)। अतः मित्रम् पाठ होना चाहिये । मित्रम् का परामर्शक होने से कोऽपि के स्थान पर किमपि प्रयोग होना चाहिये । देवः अथवा जनः का अध्याहार करें तो कोऽपि पाठ भी शुद्ध होगा ।

गै धातु अकर्मक नहीं है, क्योंकि इसके गीत आदि कर्म सम्भव हैं (यथा–'गायन्ति देवाः किल गीतकानि')। साथ ही यहाँ गीतात्मक या शब्दात्मक कर्म की विवक्षा न होने से यह शब्दकर्मक भी नहीं है। इस कारण नारद शब्द से अनुक्त कर्त्ता में तृतीया विभक्ति उचित है। यदि शब्द या गीतरूप कर्म का अध्याहार करें तो द्वितीयान्त भी साधु हो सकता है ।

भाजनवाचक और योग्यवाचक पात्र शब्द नपुंसकलिङ्ग है ('योग्य-भाजनयोः पात्रम्' अमरकोष १३८७)। अतः प्रीतिपात्रं शुद्ध रूप होगा ।

लुङ् में विहित सिच् का लोप न होने के कारण और (माङ् का योग होने से) अडागम के अभाव में भैषीः शुद्ध रूप होगा ।

विना के योग में द्वितीया, तृतीया और पञ्चमी का ही विधान है। अतः ते विना प्रयोग असाधु है। त्वां विना, त्वया विना अथवा त्वद्विना प्रयोग समीचीन होंगे ।

९. 'लुपसदचरजपजभदहदशगृभ्यो भावगर्हायाम्' ३ । १ । २४ सूत्र से लुपादि धातुओं को होने वाला यङ् केवल निन्दार्थ में ही होता है। प्रकृत पद्य में उपनिषत्कर्तृक भगवन्नामकर्मक जप के आदरपूर्वक होने से, निन्दा के कारण का

पद्मगन्धं मुखं दृष्ट्वा बाहू चाजानुलम्बिते ।
तवैव शरणं यामि दयस्व यदि रोचते ॥१०॥*
सश्रद्धया यमभ्यर्च्य जयन्ते मदनं जनाः ।
सुष्टुतः श्रेयमिच्छद्भिः शङ्करः शरणोऽस्तु नः ॥११॥

प्रसङ्ग न होने के कारण उक्त सूत्र की प्रवृत्ति न होगी । अतः यङ् के अभाव में भृशं जपन्ति यही शुद्ध रूप होगा ।

एकवचन नाम के लिये प्रयुक्त सर्वनाम तत् का वहुवचन में प्रयोग अशुद्ध है । शुद्ध रूप तस्मिन्नेव होगा ।

चाचर्यन्ते प्रयोग भी अशुद्ध है। यङ् प्रत्ययान्त चर धातु से, गर्हितं चरन्ति के अर्थ में, चञ्चूर्यन्ते यह रूप बनता है। 'चरफलोश्च' ७।४।८७ सूत्र से अभ्यास को नुगागम और 'उत्परस्यातः' ७।४।८८ से उत्तरखण्डावयव अकार को उकार आदेश होकर चञ्चूर्यन्ते रूप निष्पन्न होता है, पर गर्हितं चरन्ति का भाव न होने से यहाँ चञ्चूर्यन्ते प्रयोग भी अशुद्ध है । अतः अतिशयेन चरन्ति पाठ उचित होगा ॥ ९ ॥

१०. उपमान पूर्व में होने से गन्ध शब्द के 'उपमानाच्च' ५।४।१३७ सूत्र से इकारान्त हो जाने पर पद्मगन्धि यह शुद्ध रूप होगा ।

बाहु शब्द पुंलिङ्ग है ('भुजबाहू प्रवेष्टो दोः' अमरकोष ६११) । अतः उसका विशेषण लम्बित भी पुंलिङ्ग होगा और द्वितीया द्विवचन में लम्बितौ यह शुद्ध रूप होगा ॥ १० ॥

११. 'सश्रद्ध' पद अभ्यर्चन क्रिया का विशेषण होने से कर्म कारक हुआ, क्योंकि लघुशब्देन्दुशेखर में स्पष्ट कहा गया है कि फल भी क्रियाजन्य फल का

* यहाँ तक के दस श्लोक महाकवि श्रीमदम्बिकादत्त व्यास की कृति हैं। इसके बाद के दस श्लोक (श्लोक—संख्या ११ से २० तक) इस ग्रन्थ के टीकाकार और सम्पादक श्री केदारनाथ मिश्र की रचना है।

एकाङ्गुल्या विनिर्दिश्य गोपीं गोपोऽब्रवीदिदम् ।
कृष्णः सर्पो वसत्यत्र कुञ्जे रात्रौ न गम्यताम् ॥१२॥

व्यपदेशिवद्भाव से सम्बन्धी होने के कारण कर्म कारक होता है। इस प्रकार द्वितीयान्त रूप 'सश्रद्धं' ही शुद्ध होगा।

'जि' धातु भ्वादिगण में परस्मैपदी मानी गयी है। अतः शुद्धरूप 'जयन्ति' ही होगा।

यहाँ षत्व रहित 'सुस्तुतः' रूप ही शुद्ध है। 'सुः पूजायाम्' (१ । ४ । ९४) सूत्र से 'सु' की कर्मप्रवचनीय संज्ञा हुई, जो उपसर्ग संज्ञा की बाधिका है। अतः यहाँ उपसर्गनिमित्तक 'षत्व' नहीं होगा।

श्रेयस् शब्द नपुंसकलिङ्ग है ('मुक्तिः कैवल्यनिर्वाण-श्रेयोनिः-श्रेयसामृतम्'— अ० को० १६०)। अतः शुद्ध रूप 'श्रेय इच्छद्भिः' होगा।

'शरणम्' शब्द नपुंसक-लिङ्ग है ('शरणं गृहरक्षित्रोः' अ० को० १२५९)। अतः शुद्ध रूप 'शरणमस्तु नः' होगा ॥ ११ ॥

१२. 'एकाङ्गुलि' शब्द में तत्पुरुष समास होने के कारण 'तत्पुरुषस्याङ्गुलेः संख्याव्ययादेः' ५ । ४ । ८६ इस सूत्र से नित्य ही समासान्त अच् प्रत्यय होगा और शुद्ध रूप 'एकाङ्गुलेन' होगा।

'कृष्णः सर्पः' इस स्थल पर 'विशेषणं विशेष्येण बहुलम्' २।१।५७ इस सूत्र में बहुल ग्रहण होने से जातिविशेष के सर्प के अर्थ में नित्य समास होगा और 'कृष्णसर्पः' यह शुद्ध रूप होगा।

यदि गोपादि प्रसंग से भगवान् कृष्ण अर्थ विवक्षित है तो कृष्णः सर्पः रूप शुद्ध है ॥ १२ ॥

निमन्त्रयित्वा सच्छिष्यान् प्रत्येकात् पृष्टवान् गुरुः ।
द्वेऽशुद्धी शब्दवेत्ता यः सोऽत्र वाक्ये प्रदर्शयेत् ॥१३॥
श्रुतिः मातासमा पूज्या तथा प्राणादपि प्रिया ।
एकादेव गुरोरत्र षड्भिश्छात्रैरधीयते ॥१४॥

---

१३. निमन्त्रयित्वा' में नि पूर्वक 'ण्यन्त मन्त्र धातु से 'क्त्वा' प्रत्यय हुआ है। अतः 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' ७ । १ । ३७ इससे क्त्वा के स्थान में नित्य ल्यवादेश होने के कारण 'निमन्त्र्य' शुद्धरूप होगा।

'प्रत्येकात्' रूप पञ्चम्यन्त है और अव्ययीभाव होने से साधु है। किन्तु प्रश्नक्रिया का विशेषण होने से यहाँ कर्म कारक होगा और द्वितीयान्त 'प्रत्येकं' रूप ही शुद्ध होगा।

एदन्त द्विवचन 'द्वे' की 'ईदूदेद्द्विवचनं प्रगृह्यम्' १ । १ । ११ से प्रगृह्य संज्ञा होकर 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' ६ । १ । १२५ इस नियम से प्रकृतिभाव हो जाने पर 'द्वे अशुद्धी' यह शुद्ध रूप होगा।

'शब्दवेत्ता' प्रयोग असाधु है, क्योंकि 'तृजकाभ्यां कर्तरि' २ । २ । १५ सूत्र से षष्ठीसमास का निषेध हो जाने से षष्ठ्यन्त प्रयोग 'शब्दस्य वेत्ता' ही शुद्ध है ॥ १३ ॥

१४. 'तुल्यार्थैरतुलोपमाभ्यां तृतीयान्यतरस्याम्' २ । ३ । ७२ सूत्र के अनुसार तुल्यार्थक शब्दों के योग में तृतीया अथवा षष्ठी होती है। तुल्यार्थक 'सम' शब्द के योग में 'मातृ' पद तृतीयान्त या षष्ठ्यन्त ही होगा और शुद्धरूप 'मात्रा समा' या 'मातुः समा' होगा। 'पूर्वसदृशसमोनार्थकलहनिपुणमिश्रश्लक्ष्णैः' २ । १ । ३१ से तृतीयातत्पुरुष समास करने पर विकल्प से मातृसमा रूप भी बन सकता है। इसी प्रकार 'षष्ठी' २ । २ । ८ इस सूत्र से (षष्ठी विभक्ति मान कर) समास होने पर विकल्प से 'मातृसमा' रूप बन सकता है।

आयुर्वेदो चिकित्सायाः स्मृता श्रेष्ठतमा विधिः ।
तत्तत्त्वज्ञैः दिवानिद्रा कथिता हानिकारका ॥१५॥

असुवाची प्राणशब्द नित्य वहुवचन है ('पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः' अ० को० ८८५)। अतः प्राणेभ्योऽपि यह शुद्ध रूप होगा।

'एक' शब्द सर्वनाम-वाची होने से पञ्चमी विभक्ति में 'ङसिङ्योः स्मात्स्मिनौ' ७। १। १५ इस सूत्र से 'ङस्' के स्थान में 'स्मात्' आदेश होने से 'एकस्मात्' यह शुद्ध रूप होगा ॥ १४ ॥

१५. 'आयुर्वेदो चिकित्सायाः' इस स्थल में हश् परे न होने के कारण विसर्ग के स्थान में उत्व नहीं होगा। 'विसर्जनीयस्य सः' ८। ३। ३४ से 'सत्व' होकर 'स्तोः श्चुना श्चुः' ८।४।४० से 'श्चुत्व' होकर 'आयुर्वेदश्चिकित्सायाः' यह शुद्ध रूप होगा।

'विधि' शब्द 'क्यन्तो घुः' (४१) इस लिङ्गानुशासनीय पाणिनीय सूत्र के आधार पर पुंलिङ्ग ही है। इसका विशेषण भी पुंलिङ्ग ही होगा, स्त्रीलिङ्ग नहीं। फलतः शुद्ध रूप 'स्मृतः श्रेष्ठतमो विधिः' होगा। साधारणतया इष्ठन् प्रत्यय हो चुकने पर पुनः तमप् प्रत्यय नहीं होता। यदि अनेक श्रेष्ठ विधियों में अतिशय प्रशस्त विधि की विवक्षा हो तो इष्ठन् हो जाने के वाद भी तमप् हो सकता है।

'तृजकाभ्यां कर्तरि' २। २। १५ सूत्र से षष्ठी समास का निषेध हो जाने से 'हानिकारका' रूप न होकर 'हानेः कारिका' यह रूप होगा।

पाणिनि के 'तत्प्रयोजको हेतुश्च' १। ४। ५४ इस सौत्र प्रयोग से यदि षष्ठीसमास के निषेधको अनित्य मान लिया जाय तो 'हानिकारिका' इस रूप को शुद्ध माना जा सकता है। 'प्रत्ययस्थात्कापूर्वस्यात इदाप्यसुपः' ७। ३। ४४ इस सूत्र से नित्य 'इत्व' प्राप्त होने से 'हानिकारिका' या 'हानेः कारिका' ही शुद्धरूप होंगे। हानिकारका रूप सर्वथा अशुद्ध है ॥ १५ ॥

प्रासादपतितो वालो पादखञ्जः वभौ क्षणात् ।
भर्तृस्मरणमात्रेण भृत्योऽभूद्भयविह्वलः ॥१६॥
वेदज्ञानं विना विप्रवदनं नैव शोभते ।
अम्भोहीनः सरो यद्वत् स्मृतिकर्तुरयं मतः ॥१७॥

---

१६. 'अपेतापोढमुक्तपतितापत्रस्तैरल्पशः' २।१।३८ सूत्र में 'अल्पशः' पद के कारण केवल कुछ पञ्चम्यन्तोंका ही 'अपेतादि' के साथ समास होता है। भट्टोजिदीक्षित ने भी प्रासादात् पतितः में समास नहीं किया है। यहाँ शुद्ध रूप 'प्रासादात् पतितः' होगा। प्रासादपतित: अशुद्ध है।

'येनाङ्गविकारः' २।३।२० से तृतीया होकर 'पादेन खञ्जः' यह रूप बनता है।

'तृतीया तत्कृतार्थेन गुणवचनेन' २।१।३० इस समासविधायक सूत्र की प्राप्ति न होने से 'पादखञ्जः' रूप अशुद्ध है।

'अधीगर्थदयेशां कर्मणि' २।३।५२ इस सूत्र से षष्ठी होकर 'भर्तुः स्मरणमात्रेण' यह शुद्ध रूप होगा। 'प्रतिपदविधाना षष्ठी न समस्यते इति वाच्यम्' (२।२।१०) इस वार्तिक से समास का निषेध हो जाने के कारण 'भर्तृस्मरणमात्रेण' प्रयोग अशुद्ध है॥ १६॥

१७. 'सरः' शब्द नपुंसक लिङ्ग है। 'कासारः सरसी सरः' (अ० को० २८२)। नियमानुसार उसका विशेषण पद भी तदनुरूप नपुंसक लिङ्ग में 'अम्भोहीनं सरः' होगा।

'ओजःसहोऽम्भस्तमसस्तृतीयायाः' ६।३।३ से तृतीया के लोप का निषेध हो जाने के कारण 'अम्भसा हीनं सरः' यह शुद्ध रूप होगा।

तृजकाभ्यां कर्तरि' २।२।१५ सूत्र से षष्ठी समास का निषेध हो जाने से 'स्मृतेः कर्तुः' यह शुद्ध रूप होना चाहिए।

अधीती दर्शनस्यायमधिशेते कटे बटुः ।
अन्याशां संपरित्यज्य भगवत्पादमाश्रितः ॥१८॥

पाणिनि के 'जनिकर्तुः प्रकृतिः' १ । ४ । ३० इस सौत्र-प्रयोग में 'जनिकर्तुः' इस समस्तपद का प्रयोग देखकर यदि षष्ठीसमास के निषेध को अनित्य मान लिया जाय तो स्मृतेः कर्तुः और स्मृतिकर्तुः दोनों प्रयोगों को शुद्ध माना जा सकता है।

'नपुंसके भावे क्तः' ३ । ३ । ११४ सूत्र से सम्मत्यर्थक मत शब्द नित्य नपुंसक लिङ्ग होगा । अतः अयं मतः के स्थान पर शुद्ध रूप 'इदं मतम्' होगा । यदि कर्मणि क्त प्रत्यय मानें तो 'अयं मतः' प्रयोग को भी शुद्ध माना जा सकता है । इस स्थिति में 'मतः' का अर्थ 'स्मृतिकार को यह ज्ञात, स्वीकार या इष्ट है' यह होगा ॥ १७ ॥

१८. 'क्तस्येन्विषयस्य कर्मण्युपसंख्यानम्' (२ । ३ । ३६) इस वार्तिक (भाष्यवचन से) 'दर्शन' रूप कर्म में सप्तमी होने से 'अधीती दर्शने' यह शुद्ध रूप होगा ।

'अधिशीङ्स्थासां कर्म' (१।४।४६) इस सूत्र से शीङ् धातु के आधार 'कट' शब्द की कर्मसंज्ञा होकर 'कर्मणि द्वितीया' (२।३।२) से द्वितीया होकर 'कटमधिशेते' यह शुद्ध प्रयोग होगा ।

'अन्य' शब्द के बाद 'आशा' शब्द होने के कारण 'अषष्ठ्यतृतीयास्थस्यान्यस्य दुगाशीराशास्थास्थितोत्सुकोतिकारकरागच्छेषु' (६।३।९९) सूत्र से 'दुक्' आगम होकर 'अन्यदाशां' यह शुद्ध रूप होगा ॥ १८ ॥

चिरं प्रतीक्षितोऽस्माभिः पुण्यदृष्टोऽधुना भवान् ।
प्रदर्शयतु पद्येऽस्मिन् त्रुटीनेकाधिकान् मम ॥१९॥
तिरोभूत्वा स्थिताः काश्चिद् एषु पद्येष्वशुद्धयः ।
अनर्थमेकमप्यत्र किन्तु श्लोकं न विद्यते ॥२०॥

---

१९. 'पुण्यदृष्टः' प्रयोग अशुद्ध है। हेत्वर्थक तृतीया होने से 'कर्तृकरणे कृता बहुलम्' २।१।३२ सूत्र से समास का निषेध हो जाने के कारण 'पुण्येन दृष्टः' यह शुद्ध रूप होगा। यदि तृतीया में करणत्व विवक्षा मानें तो उपर्युक्त प्रयोग शुद्ध है।

'त्रुटि' शब्द स्त्रीलिङ्ग है 'स्त्रियां मात्रा त्रुटिः' (अ० को० ११०७)। उसका द्वितीया बहुवचन का रूप 'त्रुटीः' होगा और उसका विशेषण भी तदनुरूप ही होगा। फलतः 'त्रुटीरेकाधिका मम' शुद्ध रूप होगा ॥ १९ ॥

२०. 'तिरस्' इस पूर्व पद के अव्यय होने से भूत्वा के साथ इसका नित्य समास होगा और 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' ७।१।३७ से क्त्वा के स्थान में नित्य ल्यवादेश हो जाने पर 'तिरोभूय' यह शुद्ध रूप होगा।

बहुव्रीहि समास अभिप्रेत होने के कारण 'अर्थान्नञः' ५।४।१५१ से नित्य 'कप्'—प्रत्यय होगा और 'अनर्थं' यह रूप न बनकर 'अनर्थकम्' यह शुद्ध रूप बनेगा।

'श्लोक' शब्द पुंल्लिङ्ग है ('पद्ये यशसि च श्लोकः'—अ० को० १२०३)। 'श्लोकृ संघाते' धातु से घञ् प्रत्यय होकर निष्पन्न हुआ 'श्लोक' शब्द 'घञबन्तः' (३६) इस लिङ्गानुशासनीय सूत्र से पुंल्लिङ्ग होगा और तदनुरूप ही तुतीय-चतुर्थ चरण का शुद्ध रूप 'अनर्थक एकोऽप्यत्र किन्तु श्लोको न विद्यते' होगा ॥ २० ॥



अथ गुप्ताशुद्धिवाक्यानि

१ वाङ्मनोऽतीताय ब्रह्मणे नमः ।

२ वाक्स्तम्भनमन्त्रोऽस्माभिर्जाप्यः ।

३ स्त्रीपुंसोः स्नेह एव सर्वसुखेभ्यो विशिष्यते ।

४ सकुटुम्बाय ते स्वस्ति ।

५ यो राजा शत्रुं न विजगीषति स कातर इत्युच्यते ।

---

१. 'अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनुडुहर्क्सामवाङ्मनसाक्षिभ्रुवः.....' इत्यादि ५।४।७७ सूत्र से, वाङ्मनस् के अच् प्रत्ययान्त निपातन हो जाने पर वाङ्मनसातीताय यह शुद्ध रूप होगा ।

२. जप् में उपधा अ है और उसके बाद पवर्ग का अक्षर प् है, अतः 'पोरदुपधात्' ३ । १ । ९८ सूत्र से ण्यत् के अपवादस्वरूप यत् के हो जाने पर वृद्धिविधान के अभाव में जप्यः यह शुद्ध रूप होगा ।

३. 'अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंस.....' इत्यादि ५ । ४ । ७७ सूत्र से स्त्रीपुंस के अच् प्रत्ययान्त निपातन हो जाने पर षष्ठी में स्त्रीपुंसयोः यह शुद्ध रूप होगा ।

४. 'सहस्य सः संज्ञायाम्' ६ । ३ । ७८ सूत्र से सह को स आदेश हो जाता है । आशीर्वाद के प्रसङ्ग में सह शब्द अपने प्रकृति रूप में ही रहता है ('प्रकृत्याशिषि' ६ । ३ । ८३) अर्थात् उसे स आदेश नहीं होता, अतः शुद्ध वाक्य सहकुटुम्बाय ते स्वस्ति होगा ।

५. वि उपसर्गपूर्वक जि धातु के 'विपराभ्यां जेः १ । ३ । १९ सूत्र से आत्मनेपदी हो जाने पर तथा पूर्ववत्सनः १ । ३ । ६२ सूत्र से सन्नन्त धातु के यथापूर्व आत्मनेपदी बने रहने पर विजिगीषते यह शुद्ध रूप होगा ।

६ नौ देहि पुस्तकमेतत् ।
७ एषा दशदिवसानन्तरं पुत्रं प्रसोष्यते ।
८ योऽद्य विहरति स एव तदापि अविहरत् ।
९ एतस्य भूषणं मुष्णीहीति मा वोचः ।
१० भवान् कदानीं यास्यति ? मया तु परश्वो गमिष्यते ।

---

६. वाक्य के आदि में आवाभ्याम् को अनुदात्त नौ आदेश नहीं होता ('अनुदात्तं सर्वमपादादौ' ८ । १ । १८)। अतः यहाँ आवाभ्याम् ही शुद्ध रूप है ।

७ दशदिवस में द्विगु समास ('संख्यापूर्वो द्विगुः' २ । १ । ५२) है। अतः 'द्विगोः' ४ । १ । २१ सूत्र से ङीप् हो जाने पर दशदिवसी और सन्धि होने पर दशदिवस्यनन्तरम् यह शुद्ध रूप होगा ।

दशदिवसानन्तरं पद से अनद्यतन भविष्यत् विवक्षित है अतः 'अनद्यतने लुट्' ३ । ३ । १५ सूत्र से लुट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का शुद्ध रूप प्रसोता या प्रसविता होगा । लृट् का रूप प्रसोष्यते अशुद्ध है ।

८. अट् आगम धातु का अव्यवहित पूर्ववर्ती होगा और वि उपसर्ग अट् आगम के आगे जुड़ेगा, पीछे नहीं । अतः व्यहरत् यह शुद्ध रूप होगा ।

९. हल् के बाद यदि श्ना हो और उसके बाद हि हो तो 'हलः श्नः शानज्झौ' ३ । १ । ८ सूत्र से श्ना को शानच् आदेश हो जाता है । मुष् + श्ना + हि इस स्थिति में 'हलः श्नः शानज्झौ' सूत्र से श्ना को शानच् आदेश होकर 'अतो हेः' ६ । ४ । १०५ सूत्र से हि का लोप हो जाने पर मुषाण यह शुद्ध रूप होगा ।

१०. 'दानीं च' ५ । ३ । १८ और 'तदो दा च' ५ । ३ । १९ से होने वाला दानीं प्रत्यय इदम् और तद् शब्दों से ही होता है, किम् से नहीं । इस प्रकार कदानीं प्रयोग अशुद्ध हैं, शुद्ध रूप कदा होगा ।

११ रे क्रोष्टः किमिति रोरवीषि ?
१२ चिररात्राय लालनपालनतत्परौ मातृपितरौ को न सुस्मूर्षति ?
१३ युष्माकं गृहा जीर्णाः सन्ति अनयोर्गृहौ तु नूतनौ स्तः ।
१४ कैषाप्सरा नृत्यति गानसक्ता ?

गम् धातु से इट् आगम केवल परस्मैपद में ही होता है (गमेरिट् परस्मैपदेषु' ७ । २ । ५८)। आत्मनेपद में लृट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में गंस्यते यह रूप होता है। पर यहाँ परश्वो पद से अनद्यतन भविष्यत् की विवक्षा होने से 'अनद्यतने लुट्' ३ । ३ । १५ सूत्र से लुट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन का रूप गन्ता होगा।

११. 'तृज्वत्क्रोष्टुः' ७ । १ । ९५ सूत्र में 'सर्वनामस्थाने चासम्बुद्धौ' ६ । ४ । ८ सूत्र की अनुवृत्ति होने से 'तृज्वत्क्रोष्टुः' सूत्र की प्रवृत्ति संबुद्धिभिन्न सर्व-नामस्थान में ही होती है, अतः क्रोष्टु शब्द के स्थान पर क्रोष्टृ शब्द का प्रयोग सम्बोधनेतर में ही होता है, सम्बोधन में नहीं। प्रकृत वाक्य में सम्बोधन का प्रसङ्ग होने के कारण उकारान्त क्रोष्टु शब्द का, 'ह्रस्वस्य गुणः' ७ । ३ । १०८ से गुण होकर क्रोष्टो यह शुद्ध रूप होगा, क्रोष्टः अशुद्ध है।

१२. योनिसम्बन्धवाची ऋदन्त मातृ शब्द के बाद ऋदन्त पितृ शब्द होने से द्वन्द्व समास में 'आनङ् ऋतो द्वन्द्वे' ६ । ३ । २५ से मातृ के ऋ को आनङ् आदेश होकर मातापितरौ यह शुद्ध रूप होगा। 'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' १ । ३ । ५७ सूत्र से सन्नन्त स्मृ धातु आत्मनेपदी होगी और सुस्मूर्षते यह शुद्ध रूप होगा।

१३. पुंलिङ्ग गृह शब्द सदैव बहुवचन होता है ('गृहाः पुंसि च भूम्न्येव' अमरकोष ३२४)। अतः गृहाः तु नूतनाः सन्ति यह शुद्ध रूप होगा। अथवा नपुंसक गृह शब्द से गृहे तु नूतने स्तः यह शुद्ध रूप होगा।

१४. अप्सरस् शब्द स्त्रीलिङ्ग और नित्य बहुवचनान्त है ('स्त्रियां बहुष्व-

१५ किमित्यस्या वधोः केशेषु मलीमसता विभाव्यते ?
१६ आर्यावर्ते स्त्रियः प्रायशः स्वपत्या समं वहिर्न पर्यटन्ति ।
१७ एते जम्बूफलानि विक्रीणन्ते ।
१८ भवानेतानि किमिति न परिक्रीणाति ?
१९ भवता पश्यताम्, पाठशालायां छात्राः पठन्ति ।
२० एते छात्रा विशदं संस्कृतबोधं विभ्रन्ति ।

प्सरसः' अमरकोष ५८)। अतः शुद्ध वाक्य यह होगा—का एता अप्सरसः नृत्यन्ति गानसक्ताः।

१५. नदीसंज्ञक वधू शब्द को 'आण् नद्याः' ७।३।११२ से आडागम होकर षष्ठी एकवचन मे वध्वाः शुद्ध रूप होगा।

१६. समासयुक्त पतिशब्द की 'पतिः समास एव' १।४।८ से घि संज्ञा होकर 'आङो नाऽस्त्रियाम्' ७।३।१२० से तृतीया एकवचन में आङ् को ना आदेश हो जाने पर स्वपतिना शुद्ध रूप होगा।

१७. क्रा के वाद आनेवाले झ को 'आत्मनेपदेष्वनतः' ७।१।५ से अन्त का अपवादस्वरूप अत् आदेश हो जाने पर आत्मनेपद में प्रथमपुरुष बहुवचन में विक्राणते यह शुद्ध रूप बनेगा।

१८. परि उपसर्ग पूर्व में होने के कारण 'परिव्यवेभ्यः क्रियः' १।३।१८ सूत्र से क्रीञ् धातु आत्मनेपदी हो जायगी और प्रथमपुरुष एकवचन में परिक्रीणीते यह शुद्ध रूप होगा।

१९. 'पाघ्राद्रि' ०····७।३ ७८ सूत्र से दृश् धातु को पश्य आदेश की प्राप्ति कर्तृ-वाच्य में ही होती है। यहाँ कर्मवाच्य में उसका प्रसंग न होने से दृश्यताम् यही शुद्ध रूप होगा।

२०. झि के झ को 'अदभ्यस्तात्' ७।१।४ सूत्र से अत् आदेश होकर बिभ्रति यह शुद्ध रूप होगा।

२१ सुतरां शास्त्राणि पाठं पाठं कः को न सुखमविभ्रत् ।
२२ पटोलस्य फलं मूलं छदं च रोगमवघ्नन्ति ।
२३ यस्तव गृहं परिष्करोति स एव मद्गृहमपि परिश्चकार ।
२४ स द्वौ श्लोकौ विरच्य प्रेषितवान् ।
२५ सूर्यः सदैवोष्णीभूतो भ्राम्यति ।
२६ सन्दिहानः समापृच्छन् शिष्यो गुरुणा बोधयितव्यः ।

---

२१. 'कस्कादिषु च' ८।३।४८ से कस्को यह शुद्ध रूप होगा और 'अनद्यतने लङ्' ३ । २ । १११ से लङ् प्रथमपुरुष एकवचन का रूप अबिभः होगा ।

२२. छद शब्द पुंलिङ्ग है ('छदः पुमान्' अमरकोष ३६२) । अतः छदः और चकार से सबका समुच्चय होने से बहुवचन में अवघ्नन्ति यह शुद्ध रूप होगा ।

२३. 'संपरिभ्यां करोतौ भूषणे' ६।१।१३७ से होने वाला कृ धातु का सुट् आगम अभ्यास का परवर्ती होगा । अतः परिचस्कार यह शुद्ध रूप होगा ।

२४. वि उपसृष्ट चुरादि लघुपूर्व रच् धातु के परवर्ती णि को 'ल्यपि लघुपूर्वात्' ६ । ४ । ५६ सूत्र से (पर में ल्यप् होने के कारण) अय् आदेश होकर विरचय्य यह शुद्ध रूप होगा ।

२५. सूर्य के नित्य उष्ण होने के कारण अभूततद्भाव का प्रसङ्ग न होने से 'कृभ्वस्तियोगे सम्पद्यकर्तरि च्विः' ५।४।५० सूत्र की प्रवृत्ति न होगी और च्वि के अभाव में 'अस्य च्वौ' ७ । ४ । ३२ की प्रवृत्ति न होगी । अतः अकार का ईकार न होगा और सदैवोष्णीभूतः न होकर शुद्ध रूप सदैवोष्णभूतो या सदैवोष्णो होगा ।

२६. आङ् उपसर्ग पूर्व में होने से पृच्छ धातु के 'आङि नुप्रच्छ्योः'

२७ इदमस्मद् व्याचिख्यासितं विषयं पण्डिता विदाङ्कुर्वन्तु, मूर्खाः कथं विदाङ्करिष्यन्ति ।

२८ दिने सूर्यः प्रकाशकर्त्ता रात्रौ चाग्निसोमौ ।

२९ एष महिषवच्छ्यामो गौः कूलं चिखण्डयिषति ।

३० अस्मिन् बिले नकुलकुलानि विशन्ति, निविशन्ति च तस्मिन् मूषकाः ।

३१ अस्मिन् कुशासनेऽध्युषितः सुप्रजो राजा धैर्यधारिधौरेयोऽस्ति ।

(१।३।२१) इस वार्तिक से आत्मनेपदी हो जाने से शानच् होने पर समापृच्छमानः यह शुद्ध रूप होगा ।

२७. लोट् लकार का प्रसङ्ग न होने से विदाङ्करिष्यन्ति में 'विदाङ्कुर्वन्त्वित्यन्यतरस्याम्' ३ । १ । ४१ की प्राप्ति के अभाव में लृट् लकार का शुद्ध रूप वेदिष्यन्ति होगा ।

२८. अग्नि शब्द के उत्तरपद में सोम शब्द के होने से देवताद्वन्द्व में 'ईदग्नेः सोमवरुणयोः' ६।३।२७ सूत्र से ईद् आदेश और 'अग्नेः स्तुत्स्तोमसोमाः' ८ । ३ । ८२ सूत्र से सोम के सकार का षत्व होकर अग्नीषोमौ यह शुद्ध रूप होगा ।

२९. वति प्रत्यय क्रियासादृश्य के द्योतक स्थलों पर होता है ('तेन तुल्यं क्रिया चेद्वतिः' ५ । १ । ११५)। प्रकृतवाक्य में क्रियाजन्यसादृश्य का प्रसङ्ग न होने से वति प्रत्यय न होगा और महिष इव श्यामो गौः यह शुद्ध रूप होगा ।

३०. नि उपसर्ग पूर्व में होने के कारण विश् धातु आत्मनेपदी ('नेर्विशः' १ । ३ । १७) होगी और शुद्ध रूप निविशन्ते होगा ।

३१. अधि उपसर्ग पूर्व में होने से वस् धातु के आधार कुशासन की 'उपान्वध्याङ्वसः' १ । ४ । ४८ सूत्र से कर्म संज्ञा होकर द्वितीया विभक्ति में शुद्ध रूप इदं कुशासनम् होगा ।

३२ सुमेधसां सङ्गेन मन्दमेधसोऽपि पूज्या मेधाविनो भवन्ति ।
३३ विरोचनमरीचिमाहात्म्यादन्धतमसं प्रणष्टम् ।
३४ प्राचीनपुस्तकानि पठनपाठनाद्यगोचरीभूय लुप्तानि ।

प्रजा शब्द के पूर्व सु होने के कारण 'नित्यमसिच्प्रजामेधयोः' ५।४। १२२ सूत्र में 'नञ्दुःसुभ्यः' की पूर्वसूत्र ('नञ्दुःसुभ्यो हलिसक्थ्योरन्यतरस्याम्' ५।४।१२१) से अनुवृत्ति होने के कारण समासान्त असिच् होने पर सुप्रजाः यह शुद्ध रूप होगा।

३२. 'नित्यमसिच्प्रजामेधयोः' ५।४। १२२ से होने वाला नित्य 'असिच्' 'मेधा' शब्द के पूर्व "नञ्, दुर् या सु" के होने पर ('नञ्दुःसुभ्य इत्येव') ही होता है, अतः प्रकृत में 'नञ्दुःसु' के अभाव में मन्दमेधाः यही शुद्ध रूप होगा।

३३. 'नशेः षान्तस्य' ८।४।३६ से णत्व का निषेध होकर प्रनष्टम् यह शुद्ध रूप होगा।

३४. अव्यय का अव्ययेतर के साथ समास साधारणतया निषिद्ध है और गोचर शब्द अजहल्लिङ्ग है। अतः पठनपाठनाद्यगोचरा भूत्वा यह शुद्ध रूप होगा।

नञ् घटित रूप पठनपाठनाद्यगोचर में अभूततद्भाव अर्थात् पठनपाठनादिगोचर के पठनपाठनाद्यगोचर हो जाने का द्योतन नञ् से ही हो जाता है और उसके द्योतन के लिये च्वि का प्रयोग अनावश्यक है, जैसे अब्राह्मणो भवति में नञ् घटित रूप अब्राह्मणः में अभूततद्भाव अर्थात् ब्राह्मण के अब्राह्मण होने का द्योतन नञ् से ही हो जाता है और उसके लिये च्वि प्रत्ययान्त रूप अब्राह्मणीभवति का प्रयोग उचित नहीं। अतः अब्राह्मणो भवति की ही भाँति पठनपाठनाद्यगोचरा भूत्वा यह व्यस्त प्रयोग ही उचित है।

३५ संशृणुमहे रावणसेनायां चतुर्मूर्द्धानस्त्रिमूर्धानश्च दैत्या आसन् ।

३६ एष केवलं रूपवद्भार्यः, स तु रसिकभार्यः सरससुभाषितानन्देन यामिनीर्गमयति ।

३७ आवयोरेष विशेषो यत् त्वमकेशपत्नीकोऽहञ्च सुकेशपत्नीकोऽस्मि ।

३८ पिकशावः काकीभिः पाल्यते न तु काकीशावः पिकैः ।

३९ मूर्खाश्चतुःकृत्वः पञ्चकृत्वश्चोपदिष्टा अपि ग्रन्थाभिप्रायं नाधिगच्छन्ति ।

---

३५. त्रि शब्द के बाद मूर्धन् शब्द के होने से बहुब्रीहि समास में 'द्वित्रिभ्यां ष मूर्ध्नः' ५।४।११५ इस सूत्र से समासान्त 'ष' होकर त्रिमूर्धाः यह शुद्ध रूप होगा।

संशृणुमहे में आत्मनेपद असंगत है। यदि कथयद्भ्यः का अध्याहार कर लिया जाय तो श्रु धातु के अकर्मक हो जाने पर आत्मनेपद साधु हो जायगा।

३६. रसिका शब्द की उपधा में ककार है, अतः 'न कोपधायाः' ६।३।३७ सूत्र से इसके पुंवद्भाव का निषेध हो जाने पर रसिकाभार्यः यह शुद्ध रूप होगा।

३७. ईकारान्त स्त्रीलिङ्ग सुकेशी शब्द के स्वाङ्गवाचक होने से 'स्वाङ्गाच्चेतः' ६।३।४० से 'स्त्रियाः पुंवत्' ६।३।३४ से होने वाले पुंवद्भाव का निषेध हो जाने पर 'स्वाङ्गाच्चोपसर्जनादसंयोगोपधात्' ४।१।५४ से ङीप् होकर सुकेशीपत्नीकः यह शुद्ध रूप होगा।

३८. काकी शब्द के कुक्कुट्यादिगण में और शाव शब्द के अण्डादिगण में आने से 'कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु' (६।३।४२) इस वार्तिक से काकी शब्द का पुंवद्भाव होकर काकशावः यह शुद्ध रूप होगा।

३९. 'द्वित्रिचतुर्भ्यः सुच्' ५।४।१८ सूत्र से कृत्वसुच् के अपवाद सुच् के हो जाने पर मूर्खाः चतुः पञ्चकृत्वश्चोपदिष्टाः यह शुद्ध रूप होगा।

४० को न मधुरगानं शुश्रूषति श्रुतिमान् ?

४१ तस्याचरणं बोधश्च प्रशस्यौ स्तः ।

४२ देवदत्तं प्रति शुश्रूषति यत् एषोऽनुजिज्ञासति ।

४३ देवी खड्गेन शुम्भस्य शिरोऽप्रहरत्स च ममार ।

४४ परमेतां दुराचारामवगत्यैतद्वितरितं न कोऽप्याददाति ।

४५ कथमेष आदत्तबहुधन आस्यं व्याददाति ?

---

४०. 'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' १।३।५७ से सन्नन्त श्रु धातु के आत्मनेपदी हो जाने पर शुश्रूषते यह शुद्ध रूप होगा।

४१. आचरणम् शब्द नपुंसक है अतः बोधः शब्द के पुंल्लिङ्ग होने पर भी 'नपुंसकमनपुंसकेनैकवच्चास्यान्यतरस्याम्' १।२।६९ सूत्र से नपुंसक का एकशेष होकर एकवद्भाव में प्रशस्यमस्ति और एकवद्भाव न करने पर 'प्रशस्ये' होगा।

४२. सन्नन्त श्रु धातु के 'ज्ञाश्रुस्मृदृशां सनः' १।३।५७ सूत्र से आत्मनेपदी हो जाने पर शुश्रूषते यह शुद्ध रूप होगा।

४३. 'लुङ्लङ्लृङ्क्ष्वडुदात्तः' ६।४।७१ सूत्र से होने वाला अट् आगम धातु का अव्यवहित पूर्ववर्ती होगा और प्र उपसर्ग अडागम के पूर्व होगा, पीछे नहीं। अतः प्राहरत् यह शुद्ध रूप होगा।

४४. वितरितम् शब्द अशुद्ध है। 'श्र्युकः किति' ७।२।११ से इट् का निषेध हो जाने पर वितीर्णम् शुद्ध रूप होगा।

आङो दोऽनास्यविहरणे १।३।२० सूत्र से परस्मैपदनिषेधपूर्वक आत्मनेपद का विधान होकर आदत्ते यह शुद्ध रूप होगा।

४५. आदत्तबहुधनः अशुद्ध है। 'अच उपसर्गात्तः' ७।४।४७ सूत्र से दकार का तकार हो जाने पर आत्तबहुधनः यह शुद्ध रूप होगा।

४६ एष शुनको नित्यं भोजनसमये उपतिष्ठति ।

४७ अहोऽधुना राजा प्रतिष्ठासति शत्रून् विजिगीषया ।

४८ यथा भवान्स्वकेशांस्तैलादिभिः संस्करोति तथाहमपि निज-केशान् संश्चिकीर्षामि ।

४९ एष महिषीपदेन हतो न तथा व्यथितो यथा मृगीपदेन ताडितः ।

५० पादोपहतो विभीषणो रामं सेवयाम्बभूव ।

---

४६. उप उपसर्गपूर्वक स्था धातुके 'उपाद्देवपूजासङ्गतिकरणमित्रकरण-पथिष्विति वाच्यम्' (१।३।२५) इस वार्तिक से आत्मनेपदी हो जाने पर उपतिष्ठते यह शुद्ध रूप होगा ।

४७. ओदन्त निपात अहो की 'ओत्' १।१।१५ से प्रगृह्य-संज्ञा होकर 'प्लुत प्रगृह्या अचि नित्यम्' ६।१।१२५ से प्रकृतिभाव हो जाने पर सन्धि के अभाव में अहो अधुना यह शुद्ध रूप होगा ।

प्र उपसर्गपूर्वक स्था धातु के 'समवप्रविभ्यः स्थः' १।३।२२ से आत्म-नेपदी हो जाने पर 'पूर्ववत्सनः' (१।३।६२) सूत्र से, सन्नन्त में प्रतिष्ठासते शुद्ध रूप होगा ।

'कर्तृकर्मणोः कृति' २।३।६५ से षष्ठी होकर शत्रूणां यह शुद्ध रूप होगा ।

४८. 'संपरिभ्यां करोतौ भूषणे' ६।१।१३७ से होने वाला सुट् आगम अभ्यास के पीछे जुड़ेगा, अतः संचिस्कीर्षामि यह शुद्ध रूप होगा ।

४९. मृगी शब्द कुक्कुट्यादिगण का और पद शब्द अण्डादिगण का है, अतः 'कुक्कुट्यादीनामण्डादिषु' (६।३।४२) इस वार्तिक से पुंवद्भाव होकर मृगपदेन यह शुद्ध रूप होगा ।

५०. 'पादस्य पदाज्यातिगोपहतेषु' ६।३।५२ सूत्र से पाद को उपहत शब्द के पूर्ववर्ती होने से पद आदेश होकर पदोपहतो शुद्ध रूप होगा ।

५१ गोगोपगिलोऽघासुरः कृष्णेन व्यापादयाम्बभूवे ।
५२ काविमौ समानरूपावाजिगमिषतः ?
५३ स ऋक्सामनी अधीतवान्, एष तु ऋग्यजुषी ।
५४ विद्वत्सभायां धर्मोपदेशो भवति, रक्षःसभासु च पापोपदेशः ।
५५ किमिति नृपसभां निन्दसि, न कदाप्यवलोकिता त्वया राजसभा ?
५६ मेघा वर्षन्तु मेघा वर्षन्तु इति सम्प्रवदन्ति कृषीवलाः ।
५७ मामनाराध्य विद्याधिगमस्ते न भविष्यति ।

---

५१. गिल-भिन्न गोप शब्द के बाद गिल शब्द के आने से, 'गिलेऽगिलस्य' (६।३।७०) इस वार्तिक से मुम् होकर गोगोपङ्गिलः यह शुद्ध रूप होगा ।

५२. रूप शब्द के पहले आने वाले समान शब्द को 'ज्योतिर्जनपदरात्रि-नाभिनामगोत्ररूपस्थानवर्णवयोवचनबन्धुषु' ६।३।८५ इस सूत्र से स आदेश होकर सरूपौ यह शुद्ध रूप होगा ।

५३. 'अचतुरविचतुरसुचतुरस्त्रीपुंसधेन्वनुडुहर्क्साम.....'इत्यादि ५।४।७७ सूत्र से अजन्तनिपातन होकर ऋक्सामे और ऋग्यजुषे शुद्ध रूप होंगे ।

५४. रक्षः शब्द पूर्व में होने से समान्त तत्पुरुष के 'सभा राजाऽमनुष्य-पूर्वा' २।४।२३ सूत्र से नपुंसक लिङ्ग हो जाने पर सप्तमी में रक्षःसभेषु यह शुद्ध रूप होगा ।

५५. राजपर्याय नृप शब्द के पूर्व में होने से सभान्त तत्पुरुष के 'सभा-राजाऽमनुष्यपूर्वा' २।४।२३ सूत्र से नपुंसकलिङ्ग हो जाने पर द्वितीया में नृपसभम् यह शुद्ध रूप होगा ।

५६. 'व्यक्तवाचां समुच्चारणे' १।३।४८ से आत्मनेपद का विधान होकर सम्प्रवदन्ते यह शुद्ध रूप होगा ।

५७. अनाराध्य के बाद 'तिष्ठतः' पद का अध्याहार करके समानकर्तृकत्व

५८ इदमत्यन्तमशुद्धं वाक्यम्, एनं वैयाकरणोऽपि न वेत्ति।
५९ खलानां संसर्गात्को न विरिरंसते?
६० कम्पमानान् वृक्षान् दृष्ट्वा किमिह कम्पसे? वायुरेतान् कम्पयते।
६१ अहं सावधानतया वारं वारमुवाच, न भवन्तः शृण्वन्ति।
६२ किमिति भोजयते भवानस्मान् नाहं लशुनं कदापि पस्पर्श।

सम्पादित हो जाने पर 'समानकर्तृकयोः पूर्वकाले' ३।४।२१ और 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' ७।१।३७ से ल्यप् करके मामनाराध्य प्रयोग को साधु माना जा सकता है। महाकवियों ने भी ऐसे प्रयोग किये हैं, यथा 'अवजानासि मां यस्मादतस्ते न भविष्यति। मत्प्रसूतिमनाराध्य प्रजेति त्वां शशाप सा॥' रघु० १।७७। अन्यथा समानकर्तृकत्व के अभाव में मदाराधनं विना यह शुद्ध रूप होगा।

५८. एतद् सर्वनाम नपुंसकलिङ्ग वाक्य का परामर्शक है, अतः अन्वादेशे नपुंसके एनद्वक्तव्यः (२।४।३४) वार्तिक से द्वितीया एकवचन का शुद्ध रूप एनत् होगा।

५९. वि उपसर्ग पूर्व में होने से रम् धातु के 'व्याङ्परिभ्यो रमः' १।३।८३ सूत्र से परस्मैपदी हो जाने पर 'पूर्ववत्सनः' १।३।६२ सूत्र से सन्नन्त में शुद्ध रूप विरिरंसति होगा।

६०. चलनार्थक कम्प धातु से ण्यन्त में 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' १।३।८७ सूत्र से आत्मनेपद का निषेध होकर परस्मैपद में शुद्ध रूप कम्पयति होगा।

६१. अपने ही द्वारा सावधानी पूर्वक बोले गये वचन परोक्ष नहीं हो सकते। लिट् लकार का प्रयोग अशुद्ध है। शुद्ध रूप अवोचम् या अब्रवम् होगा।

६२. निगरणार्थक ण्यन्त में आत्मनेपद के निषेध और परस्मैपद के विधान करने वाले सूत्र 'निगरणचलनार्थेभ्यश्च' १।३।८७ से परस्मैपद का रूप भोजयति होगा।

६३ व्यापारमिषेण गौरमुखा आर्यावर्तं समाजग्मुः ।

६४ भो बालाः पठत, एवं स्म गुरुरुवाच ।

६५ हा धिक्! अपि मातरमताडयत् भवान्?

६६ अहो किं जातु वेश्यामभियास्यति भवान्?

६७ न श्रद्दधे किङ्किल त्वं वेश्यां स्निह्यसि ।

६८ यत्त्वं ब्राह्मणः सुरां सेवसे, यच्च शूद्रीमुखं चुम्बसि अन्याय्यं तत् ।

६९ चित्रं यच्च वैष्णवो मत्स्यमांसमभुनक् ।

अपने ही द्वारा न किया गया लशुन का स्पर्श परोक्ष नहीं हो सकता, अतः लिट् का प्रयोग अशुद्ध है । शुद्ध रूप **अस्पृशम्** या **अस्प्राक्षम्** होगा ।

६३. स्म अव्यय के योग में लिट् के स्थान पर लट् का प्रयोग होता है, अतः 'लट् स्मे' ३।२।११८ सूत्र से यहाँ लिट् का निषेध होकर लट् का प्रयोग होगा और शुद्ध रूप **आगच्छन्ति स्म** होगा ।

६४. 'लट् स्मे' ३।२।११८ से लिट् लकार का निषेध होकर लट् का रूप होगा । **वक्ति स्म** या **आह स्म** शुद्ध रूप होगा ।

६५. निन्दा का प्रसङ्ग होने से 'गर्हायां लडपिजात्वोः' ३।३।१४२ सूत्र से सभी लकारों का अपवादस्वरूप लट् होगा और **ताडयति** यह शुद्ध रूप होगा ।

६६. गर्हा का प्रसङ्ग होने से 'गर्हायां लडपिजात्वोः' ३।३।१४२ सूत्र से जातु के योग में लट् लकार का रूप **अभियाति** होगा ।

६७. 'किङ्किलास्त्यर्थेषु लृट्' ३।३।१४६ सूत्र से लृट् का रूप **स्नेक्ष्यसि** होगा ।

६८. स्त्रीत्व विवक्षा में जात्यर्थक शूद्र शब्द से 'शूद्रा चामहत्पूर्वा जातिः' (४।१।४) वार्तिक से टाप् होकर **शूद्रामुखम्** यह शुद्ध रूप होगा ।

'गर्हायाञ्च' ३।३।१४९ सूत्र से लिङ् का विधान होकर प्रकृत वाक्य में **चुम्बेः** यह शुद्ध रूप होगा ।

६९. भोजनार्थ में भुज् धातु का प्रयोग होने के कारण यहाँ 'भुजोऽनवने'

७० हरिभक्तो भूमिस्थोऽपि वासवं हसति ।
७१ अध्यापकब्राह्मणाः शिष्यान् पिपाठयिषन्ति ।
७२ अनयोरेकः सुरापी, अन्यश्च क्षीरपी ।
७३ एष सन्देशहर एव भारहरतामङ्गीकरिष्यति ।

१।३।६६ सूत्र से आत्मनेपद का विधान होकर चित्रीकरणे च ३।३।१५० सूत्र से लिङ् का रूप भुञ्जीत होगा ।

७०. भूमि शब्द के वाद आने वाले स्थ के सकार का "अम्बाम्बगोभूमिसव्यापद्वित्रिकुशेकुशङ्क्वङ्गुमञ्जिपुञ्जिपरमेवर्हिर्दिव्यग्निभ्यः स्थः' ८।३।९७ सूत्र से षत्व और 'ष्टुना ष्टुः' ८।४।४१ से ष्टुत्व हो जाने पर भूमिष्ठः यह शुद्ध रूप होगा ।

७१. "पोटायुवतिस्तोककतिपयगृष्टिधेनुवशावेहद्बष्कयणीप्रवक्तृश्रोत्रियाध्यापकधूर्तैर्जातिः" २।१।६५ इस सूत्र से "अध्यापक" पद का परनिपात होकर "ब्राह्मणाध्यापकाः" शुद्ध रूप होगा ।

७२. "सुरा पीने वाली" और "क्षीर पीने वाली" इन स्त्रीलिङ्ग अर्थों की विवक्षा होने पर एकः और अन्यः के स्थान पर क्रमशः एका और अन्या होगा । 'गापोष्टक्' ३।२।८ से विहित टक् की प्रवृत्ति 'पिवतेः सुराशीध्वोरिति वाच्यम्' (३।२।८) वार्तिक से सुरा और शीधु शब्दों के पूर्व में होने पर ही होती है । अतः सुरापी शब्द तो निष्पन्न हो जाता है, पर 'क्षीरपी' नहीं । टक् विधायक सूत्र न होने से, ङीप् न होकर टाप् ही होगा और क्षीरपा शुद्ध शब्द होगा । पुंलिङ्ग की विवक्षा में टक् और क होकर क्रमशः सुरापः और क्षीरपः रूप होंगे ।

७३. "हरतेरनुद्यमनेऽच्" ३।२।९ से होने वाले अच् का विधान उद्यमेतर अर्थ में ही होने से, यहाँ अच् का प्रसङ्ग नहीं है । अतः 'कर्मण्यण्' ३।२।१ से अण् होकर भारहारताम् यह शुद्ध रूप होगा ।

७४ एष कर्मकरः स च कलहकरः, उभावपि निशाकरं नावलोकयतः ।

७५ सज्जनः क्लेशापहो दुर्जनश्च सुखापहो भवति ।

७६ जगत्कर्ता नित्योऽनित्यो वेत्यस्य समाहितिः कार्या ।

७७ एष मूकस्तृषां द्योतयितुं मुखं व्याददन् पानीयं याचते ।

७८ अस्मिन् वृक्षे द्वे फलेऽतितरां संशोभेते ।

७९ गुरुं प्रार्थयित्वा गृहं गच्छत ।

८० भो गणक ! अस्य कुक्कुट्यण्डकस्य क्षेत्रफलं दिश ।

---

७४. 'न शब्दश्लोककलहगाथावैरचाटुसूत्रमन्त्रपदेषु' २।२।२३ सूत्र द्वारा ट का निषेध होकर 'कर्मण्यण्' ३ । २ । १ से अण् प्रत्यय होकर "कलहकारः" यह शुद्ध रूप होगा ।

७५. अपे क्लेशतमसोः ३ । २ । ५० से होनेवाले ड की प्राप्ति का प्रसङ्ग न होने से 'क्विप्' होकर सुखापहा यह शुद्ध रूप होगा ।

७६. " तृजकाभ्यां कर्तरि" २ । २ । १५ सूत्र द्वारा तृजन्त 'कर्तृ' पद के समास का निषेध होकर जगतः कर्ता यह शुद्ध रूप होगा । "त्रिभुवन-विधाता" आदि प्रयोगों का निर्वाह शेष षष्ठी मानकर हो सकता है ।

७७. "नाभ्यस्ताच्छतुः" ७ । १ । ७८ से "नुम्" का निषेध होकर "व्याददत्" यह शुद्ध रूप होगा ।

७८. एदन्त द्विवचन फले की "ईदूदेद् द्विवचनं प्रगृह्यम्" १।१।११ से प्रगृह्यसंज्ञा होकर 'प्लुतप्रगृह्या अचि नित्यम्' ६ । १ । १२५ से प्रकृतिभाव हो जानेपर सन्धि के अभाव में "फले अतितरां" यह शुद्ध रूप होगा ।

७९. 'समासेऽनञ्पूर्वे क्त्वो ल्यप्' ७ । १ । ३७ से ल्यप् आदेश होकर "प्रार्थ्य" यह शुद्ध रूप होगा ।

८०. कुक्कुटी शब्द के कुक्कुट्यादिगण में और अण्ड शब्द के अण्डादि-

८१ लज्जावती नवोढा विलसद्भ्यां दृग्भ्यां वीक्षते ।

८२ अहो ! आनन्दम् यद्राजा प्रजावत्सलतामूरीकरोति ।

८३ एषा नदी उच्छलद्भिरद्भिरिमं नीवृद्भागं रुन्धति स्म ।

८४ स श्वेतैर्मुक्ताफलैर्भ्रातारं स्वसारं च भूषयति ।

८५ हन्त ! कष्टं यद्वयं संस्कृतभाषां परित्यज्य यवनभाषामधीयिमहे ।

८६ भवान् स्वपुत्रस्य नाम कदा ब्रविष्यति ?

गण में आने से 'कुक्कुटयादीनामण्डादिषु' (६ । ३ । ४२) वार्तिक से पुंवद्भाव होकर कुक्कुटाण्डकस्य यह शुद्ध रूप होगा ।

८१. स्त्रीलिङ्ग शब्द "दृक्" का विशेषण भी स्त्रीलिङ्ग ही होगा, अतः "उगितश्च" ४ । १ । ६ से ङीप् होकर विलसन्तीभ्याम् यह शुद्ध रूप होगा ।

८२. आनन्द शब्द पुंल्लिङ्ग ("स्यादानन्दथुरानन्दः" अमरकोष १४७) है, अतः अहो आनन्दः यह शुद्ध रूप होगा ।

८३. विशेष्य के ही अनुरूप अद्भिः ('आपः स्त्री भूम्नि' अमरकोष २५७) का विशेषण स्त्रीलिङ्ग होगा और शुद्ध रूप उच्छलन्तीभिः होगा । साथ ही रुन्धति के स्थान पर रुणद्धि होगा ।

८४. "अप्तृन्तृच्" इत्यादि ६ । ४ । ११ सूत्र की प्राप्ति न होने से दीर्घ के अभाव में भ्रातरम् यही शुद्ध रूप होगा ।

८५. "टित आत्मनेपदानां टेरे" ३ । ४ । ७९ की प्राप्ति का प्रसंग न होने से एत्व के अभाव में लिङ् में अधीयाम शुद्ध रूप होगा ।

८६. "ब्रुवो वचिः" २ । ४ । ५३ से 'ब्रू' को वचि आदेश होकर लृट् की विवक्षा में वक्ष्यति यह शुद्ध रूप होगा ।

"विभाषा कदाकर्ह्योः" ३ । ३ । ५ से विकल्प से लट् का रूप ब्रवीति भी शुद्ध होगा ।

८७ त्वया अहिनकुलयोर्वृत्तान्तः समगामि ।

८८ एष वीरः शत्रूनाहन्ति, शत्रुपत्न्यश्च स्वमेव शिरो वक्षश्चाघ्नन्ति ।

८९ एते बुभुक्षिता विद्यार्थिनः पाकपात्राण्युत्तपन्ति, स तु शीतार्तः स्वपाणिमेवोत्तपति ।

९० अग्निसन्तप्तमयोऽपि दहिष्यति ।

९१ यद्येवं न दास्यसि चेत्तर्हि राजनियमान्निग्राह्य गृहीष्यामि ।

९२ सर्वेऽपि 'गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनं क्व मिलति' इति पपृच्छुः ।

९३ यः पठेन्नातियत्नेन न स विद्यां लभेत् क्वचित् ।

---

८७. शाश्वत विरोध वाले अहि-नकुल को "येषाञ्च विरोधः शाश्वतिकः" २।४।९ सूत्र से एकवद्भाव द्वन्द्व होकर "अहिनकुलस्य" यह शुद्ध रूप होगा।

८८. "आङो यमहनः" १।३।२८ इस सूत्र और स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्' (१।३।२८) इस वार्तिक से स्वाङ्गकर्मक 'हन्' धातु से आत्मनेपद होकर "आघ्नते" यह शुद्ध रूप होगा।

८९. "स्वाङ्गकर्मकाच्चेति वक्तव्यम्" (१।३।२७) इस वार्तिक से, स्वाङ्गकर्मक "उत्" उपसृष्ट "तप्" धातु आत्मनेपदी हो जायगी और "उत्तपते" यह शुद्ध रूप होगा।

९०. "इट्" की प्राप्ति न होने से "धक्ष्यति" शुद्ध रूप होगा।

९१. लृट् लकार में सम्प्रसारण की प्रसक्ति न होने से 'ग्रहीष्यामि' यह शुद्ध रूप होगा।

९२. "ग्रहिज्यावयिव्यधिवष्टिविचतिवृश्चतिपृच्छतिभृज्जतीनां ङिति च" ६।१।१६ से होने वाले सम्प्रसारण का प्रसङ्ग न होने से 'पप्रच्छुः' यह शुद्ध रूप होगा।

९३. डुलभष् धातु आत्मनेपदी है अतः शुद्ध रूप 'लभेत' होगा।

९४ दातारः स्वं प्राणं वर्ष्मापि च ददन्ति ।
९५ क्लेशितो बाल उच्चै रुरोदिषति ।
९६ विषयी दरिद्राति त्यागिनस्तु न दरिद्रान्ति ।
९७ स तस्य गुणानजीगणत्, मदग्रे च अचीकथत् ।
९८ धन्या गोपकन्या या। वन्यापि कृष्णमनः समचुचोरत् ।
९९ शीघ्रं पठनमारभणीयम्, ज्ञानं च लभनीयम् ।
१०० कृष्णे जाते कंसप्रहरिमण्डल असुस्वपत् ।

---

९४. "नाभ्यस्ताच्छतुः" ७ । १ । ७८ सूत्र से नुम् का निषेध हो जाने पर 'ददति' यह शुद्ध रूप होगा । प्राण शब्द नित्य बहुवचनान्त पुंलिङ्ग ('पुंसि भूम्न्यसवः प्राणाः' अमरकोश ८८५) है, अतः शुद्ध रूप 'स्वान् प्राणान्' होगा ।

९५. "रुदविदमुषग्रहिस्वपिप्रच्छः संश्च" १ । २ । ८ सूत्र से सन् को कित् होने से गुण की प्रसक्ति के अभाव में 'रुरुदिषति' यह शुद्ध रूप होगा ।

९६. "अदभ्यस्तात्" ७ । १ । ४ से झ को अत् आदेश हो जाने पर, बहुवचन में 'दरिद्रति' यह शुद्ध रूप होगा ।

९७. अचीकथत् प्रयोग अशुद्ध है । अग्लोपी (अक् का लोप करने वाला) होने से अभ्यास के इत्व के प्रसङ्ग के अभाव में 'अचकथत्' यह शुद्ध रूप होगा ।

९८. गुण की प्राप्ति न होने से "दीर्घो लघोः" ७ । ४ । ९४ सूत्र से अभ्यास के चु का चू हो जाने पर 'समचूचुरत्' यह शुद्ध रूप होगा ।

९९. "रभेरशब्लिटोः" ७ । १ । ६३ से नुम् होकर 'आरम्भणीयम्' और "लभेश्च" ७ । १ । ६४ इस सूत्र से नुम् होकर 'लम्भनीयम्' यह शुद्ध रूप होगा ।

१००. णिच् की आवश्यकता न होने से 'अस्वपत्' यह शुद्ध रूप होगा ।

१०१ पञ्जरस्थोऽपि व्याघ्रो देवदत्तं भीषयति, स च तत्कथा-ख्यानैरपरान् भीषयते ।

१०२ उत्तरस्यां दक्षिणस्यां च ध्रुवौ स्तः, पूर्वस्यां पश्चिमस्यां च रवेरुदयास्तौ ।

१०३ अस्मादृशो युष्मादृशं न सिषेविषति ।

१०४ अहं भवन्तं रणाजिरं सनाथयितुमुत्सिषाहयिषामि ।

१०५ क्रीडन्तं बालं दृष्ट्वा माता अहासीत् ।

१०६ बालकः फलानि विहायि मृत्तिकामविभक्षत् ।

---

१०१. "भीस्म्योर्हेतुभये" १ । ३ ।६८ से आत्मनेपद होकर भीषयति के स्थान पर 'भीषयते' होगा और भय के हेतु के अभाव में षुग्विधायक "भियो हेतुभये षुक्" ७ । ३ । ४० की प्राप्ति न होने पर 'भीषयते' के स्थान पर 'भाययति' यह शुद्ध रूप होगा ।

१०२. सर्वनामसंज्ञा के अभाव में स्याट् की प्राप्ति न होने से 'पश्चिमायाम्' यह शुद्ध रूप होगा । उदयास्तम् अव्यय है, अतः उदयास्तौ न होकर 'उदयास्तम्' होगा । 'अस्तुस्तु चरमक्ष्माभृद्' इस अमरकोष के अनुसार 'उदयास्तौ' भी हो सकता है ।

१०३. "पूर्ववत्सनः" १ । ३ । ६२ से आत्मनेपद होकर 'सिषेविषते' यह शुद्ध रूप होगा ।

१०४. "सः स्विदिस्वदिसहीनां च" ८ । ३ । ६२ से षत्व का निषेध होकर 'उत्सिसाहयिषामि' यह शुद्ध रूप होगा ।

१०५. "ह्म्यन्तक्षणश्वसजागृणिश्व्येदिताम्" ७ । २ । ५ सूत्र से वृद्धि का निषेध हो जाने पर 'अहसीत्' यह शुद्ध रूप होगा ।

१०६. णिच् अनुपयोगी है, अतः शुद्ध रूप 'अभक्षत्' होगा ।

१०७ जननीदुग्धेन बालस्य कण्ठमार्द्रं बभूव ।
१०८ सुरापानेषु देशेषु ब्राह्मणा न यान्ति ।
१०९ कर्तृगामिनि क्रियापदे आत्मनेपदम् ।
११० सा आर्द्रगोमयेण माषकुम्भवापेण च गृहं भूषयति ।
१११ नन्दप्राङ्गणसंस्थितो हरिरसौ सानन्दमाक्रीडति ।*
११२ सारथिः तुरगैः रथं वाहयति ।

---

१०७. कण्ठ शब्द पुंलिङ्ग है ('कण्ठो गलोऽथ ग्रीवायाम्' अमरकोष ६५२) अतः 'कण्ठ आर्द्रो बभूव' शुद्ध रूप होगा ।

१०८. "पानं देशे" ८ । ४ । ९ इस सूत्र से णत्व होकर 'सुरापाणेषु' यह शुद्ध रूप होगा ।

१०९. "कुमति च" ८ । ४ । १३ सूत्र से णत्व होकर 'कर्तृगामिणि' यह शुद्ध रूप होगा । 'प्रष्ठोऽग्रगामिनि' ८ । ३ । ९२ सूत्र में पूर्वपद में णत्व के हेतु रेफ के होते हुए भी णत्व नहीं हुआ है, कुछ लोगों के मत से इसी प्रकार कर्तृगामिनि प्रयोग भी शुद्ध है ।

११०. "पदव्यवायेऽपि" ८ । ४ । ३८ सूत्र से णत्व का निषेध हो जाने पर 'माषकुम्भवापेन' यह शुद्ध रूप होगा ।

१११. 'आङ्' उपसर्ग पूर्व में होने से क्रीड् धातु के "क्रीडोऽनुसंपरिभ्यश्च" १ । ३ । २१ सूत्र से आत्मनेपदी हो जाने पर शुद्ध रूप 'आक्रीडते' होगा ।

११२. 'नियन्तृकर्तृकस्य वहेरनिषेधः' (१ । ४ । ५२) इस वार्तिक से 'नीवह्योर्न' (१ । ४ । ५२) इस वार्तिक का निषेध हो जाने पर "गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणिकर्ता स णौ" (१ । ४ । ५२)

---

* यहाँ तक के १११ वाक्य श्री अम्बिकादत्त व्यास की कृति हैं, आगे के १९ वाक्य (वाक्य-संख्या ११२ से १३० तक सम्पादक ने जोड़े हैं ।

११३ सम्प्रति तां दयनीयां स्थितिं मां मा स्मारय ।

११४ मनसा स्वर्गाय गच्छति ।

११५ दास्यै वस्त्रं संयच्छति कामुकः ।

११६ तस्यां पुस्तकानां ग्रन्थौ वहुमूल्यानि पुस्तकानि सन्ति ।

इस सूत्र से 'तुरग' रूप प्रयोज्य कर्ता की कर्मसंज्ञा नित्य होगी और 'सारथिः तुरगान् रथं वाहयति' यह शुद्ध प्रयोग होगा ।

११३. 'दृशेश्च' (१।४।५२) इस वार्तिक के सामर्थ्य से "गतिबुद्धिप्रत्यवसानार्थशब्दकर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ" १।४।५२ इस सूत्र में 'बुद्धि' पद से ज्ञानसामान्य ही विवक्षित है, अतः ज्ञानविशेषार्थक 'स्मृ' धातु के योग में प्रयोज्य कर्ता—अनुक्त होने के कारण तृतीयान्त ही रहेगा और 'माम्' के स्थान में 'मया' यह शुद्ध रूप होगा । शुद्ध प्रयोग 'सम्प्रति तां दयनीयां स्थितिं मया मा स्मारय' होगा ।

११४. प्रकृत वाक्य में चेष्टा रूप अर्थ अभिप्रेत न होने के कारण 'गत्यर्थकर्मणि द्वितीयाचतुर्थ्यौ चेष्टायामनध्वनि' २।३।१२ सूत्र से होने वाली चतुर्थी विभक्ति की प्रवृत्ति न होगी तथा "कर्मणि द्वितीया" २।३।२ इस सूत्र से ही द्वितीया होकर 'मनसा स्वर्गं गच्छति' यह शुद्ध प्रयोग होगा ।

११५. "अशिष्टव्यवहारे दाणः प्रयोगे चतुर्थ्यर्थे तृतीया" (२।३।२३) इस महाभाष्यवचन से चतुर्थ्यर्थ में तृतीया विभक्ति होगी और 'दास्या वस्त्रं संयच्छति कामुकः' यह शुद्ध रूप होगा ।

११६. 'ग्रन्थि' शब्द पुंलिङ्ग है ('ग्रन्थिर्ना पर्वपरुषी' अ०-को० ५१०), अतः उसका विशेषण भी तदनुरूप पुंलिङ्ग ही होगा और शुद्ध रूप 'तस्मिन् पुस्तकानां ग्रन्थौ' होगा ।

११७ मैत्रो नारायणार्चनाय नितरां कुशलोऽस्ति ।
११८ द्वादशवर्ष पठित्वा व्याकरणम् आचार्यपदवीं लब्धवानयम् ।
११९ युद्धाङ्गणं भीरुस्थानं भवति किम् ?
१२० तत्पुष्पमङ्गुलिसङ्गेन म्लानमभूत् ।
१२१ पितृच्छात्रादहं व्याकरणमपठम् ।
१२२ अस्ति कालो यद् भुङ्क्तां भवान् ।

---

११७. "आयुक्तकुशलाभ्यां चासेवायाम्" २।३।४० इस सूत्र से षष्ठी या सप्तमी होकर 'नारायणार्चनस्य' या 'नारायणार्चने' यह शुद्ध रूप होंगे ।

११८. प्रकृतवाक्य में आचार्य पदवी रूप फल की प्राप्ति हो जाने का उल्लेख होने के कारण "अपवर्गे तृतीया" २।३।६ इस सूत्र से तृतीया विभक्ति होगी और 'द्वादशवर्षेण पठित्वा व्याकरणम्' यह शुद्ध रूप होगा ।

११९. "भीरोः स्थानम्" ८।३।८१ इस सूत्र से 'स्थान' शब्द के सकार को मूर्धन्यादेश हो जायगा और 'ष्टुना ष्टुः' ८।१।४१ सूत्र से ष्टुत्व होकर 'भीरुष्ठानं' यह शुद्ध रूप बनेगा ।

१२०. "समासेऽङ्गुलेः सङ्गः" ८।३।८० इस सूत्र से प्रकृत वाक्य में 'सङ्ग' शब्द के सकार को नित्य मूर्धन्यादेश हो जायेगा और "अट्कुप्वाङ्नुम् व्यवायेऽपि" ८।४।२ सूत्र से 'णत्व' होकर शुद्ध रूप 'अङ्गुलिषङ्गेण म्लान-मभूत्' होगा ।

१२१. "ऋतो विद्यायोनिसम्बन्धेभ्यः" ६।३।२३ इस सूत्र से अलुक् समास होकर 'पितुश्छात्रात्' यह शुद्ध रूप होगा ।

१२२. 'यद्' शब्द के उपपद होने के कारण "लिङ् यदि" ३।३।१६८ इस सूत्र से नित्य लिङ् लकार होगा और शुद्ध वाक्य 'अस्ति कालो यद् भुञ्जीत भवान्' होगा ।

१२३ अस्य युवकस्य मुखे राजवर्चो भासते ।
१२४ साधु विक्रामति हयः ।
१२५ शिष्यमनुजिज्ञासते गुरुः ।
१२६ अहं श्वः क्षिप्रं धान्यं वप्तास्मि ।
१२७ सम्भावयामि यद्भोक्ष्यतेऽत्रभवान् ।
१२८ अस्मिन् महर्घे काले वह्वपत्यता दुःखदायिका ।

---

१२३. 'पल्यराजभ्यां चेति वक्तव्यम्' (५।४।७८) इस वार्तिक से नित्य अच् प्रत्यय होकर 'राजवर्चसम्' यह शुद्ध रूप होगा।

१२४. प्रकृत वाक्य में 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'क्रमु' धातु से 'वेः पादविहरणे' १।३।४१ इस सूत्र से नित्य आत्मनेपद होकर 'विक्रमते' यह शुद्ध रूप होगा।

१२५. "नानोर्ज्ञः" १।३।५८ सूत्र से सन्नन्त 'ज्ञा' धातु से आत्मनेपद का निषेध हो जाने के कारण परस्मैपदी प्रयोग 'अनुजिज्ञासति' ही शुद्ध होगा।

१२६. प्रकृत वाक्य में 'श्व': शब्द अनद्यन भविष्यत् का सूचक है अतः सामान्यतया लुट् लकार का प्रयोग उचित लगता है किन्तु "क्षिप्रवचने लृट्" ३।३।१३३ इस विशेष सूत्र के द्वारा लृट् लकार का विधान होकर शुद्ध रूप 'वप्स्यामि' होगा।

१२७. "विभाषा धातौ संभावनवचनेऽयदि" ३।३।१५५ सूत्र विकल्प से लिङ् और लृट् का विधान करता है, पर 'यद्' शब्द के योग में इस विकल्प का निषेध भी करता है। प्रकृत वाक्य में 'यद्' शब्द का प्रयोग होने से नित्य लिङ् लकार होगा और शुद्ध रूप 'भुञ्जीत' होगा।

१२८. "आन्महतः समानाधिकरणजातीययोः" ६।२।४६ इस सूत्र से

१२९ अपकिरति नदी कूलं हृष्टो महोक्षः ।
१३० गाणपत्यस्य मन्त्रस्य जपमनुतिष्ठति विप्रः ।

आत्व होकर 'महा+अर्घे' इस स्थिति में "अकः सवर्णे दीर्घः" ६।१।१०१ से दीर्घ होकर 'महार्घे' यह शुद्ध रूप होगा ।

१२९. 'किरतेर्हर्षजीविकाकुलायकरणेष्विति वाच्यम्' (१।३।२१) इस वार्तिक से प्रकृत वाक्य में कॄ (विक्षेप) धातु से आत्मनेपद का विधान होकर, "अपाच्चतुष्पाच्छकुनिष्वालेखने" ६।१।१४२ इस सूत्र से 'अप' उपसर्ग के परे 'कॄ' (विक्षेपे) धातु होने के कारण सुडागम होकर 'अपस्किरते' यह शुद्ध रूप होगा ।

१३०. 'गाणपत्यस्य' प्रयोग अशुद्ध है । "अश्वपत्यादिभ्यश्च" ४।१।८४ इस सूत्र से 'अण्' प्रत्यय होकर, 'यस्येति च' ६।४।१४८ सूत्र से 'गणपति' का इकार का लोप हो जाने पर 'गाणपतस्य' यह शुद्ध रूप होगा ।

—•—

अभ्यर्थनम्

श्रीमद्गौडेन्द्रवंशे हरिचरणरजःपूरपूतान्तरात्मा
दुर्गादत्ताभिधानः समजनि सुयशोभासिशोभाविशिष्टः ।
तत्पुत्रः श्रीशपादाम्बुजयुगमधुलिट् तातपादोपसेवी
अम्बादत्ताभिधानः सरुचि रचितवान् संस्कृताशुद्धिगद्यम् ॥
ससाधुवादेन विजृम्भितानां कृपाकटाक्षैः समुदञ्चितानाम् ।
लेखस्त्वयं सद्रुचिरोचितानां स्यादास्पदं विज्ञविलोकितानाम् ॥
दोषज्ञा अपि विद्वांसः स्वीकुर्वन्तु गुणज्ञताम् ।
लेखं मदीयमालोक्य बालबोधविधायकम् ॥

बारावङ्कीतिनाम्नि प्रथितजनपदे पुण्यसाकेतसीम्नि,
शाकद्वीपीयविप्रेषु विजयनगरेऽभूद् भरद्वाजगोत्रः ।
लक्ष्मीनारायणाख्यः सुविदितमहिमा राजमान्यो मनीषी,
तत्पौत्रः काशिवासी विमलमतिरुमाशङ्करात्लब्धदेहः ॥
विद्वन्मार्गानुगामी सहृदयोऽध्यापको दर्शनानाम्,
मिश्रः केदारनाथः स्मरहरनगरीविश्वविद्यालयीयः ।
वेदाक्ष्याकाशनेत्रे शरदि शरद्दतौ वैक्रमे व्याख्यदेनम्,
गुप्ताशुद्धीः प्रदर्श्याखिलविबुधमुदे भाषया व्यासलेखम् ॥

इति श्रीकाशिकहिन्दुविश्वविद्यालयीय भारतीमहाविद्यालये भारतीय-
दर्शनधर्मशास्त्राध्यापकेन श्रीकेदारनाथमिश्रेण विरचिता
गुप्ताशुद्धिप्रकाशिकाख्या गुप्ताशुद्धिप्रदर्शनव्याख्या
समाप्ता

❀ देव्यै नमः ❀

व्युत्पत्तिप्रदर्शनम्

कर्तृगुप्तम्

गौरीनखरसादृश्यश्रद्धया शशिनं दधौ ।
इहैव गोप्यते कर्ता वर्षेणापि न लभ्यते ॥ १ ॥
शरदिन्दुकुन्दधवलं नगपतिनिलयं मनोहरं देवम् ।
यैः सुकृतं कृतमनिशं तेषामेव प्रसादयति ॥ २ ॥

❀ श्रीः ❀

बालञ्चापि कलाकलापरहितं दोषाकरं यो जडम्
धृत्वा मूर्द्धनि दत्तवान् बहुविधप्रोत्साहनं शङ्करः ।
यः काश्यां निवसन्ननेकविबुधैः संस्तूयतेऽहर्निशम्
सोऽयं चन्द्रधरोऽत्र मे गुरुवरो भूयाद् भ्रमोन्मूलकः ॥ १ ॥
व्युत्पत्त्यै छात्रलोकानां कूटपद्यानि भाषया ।
केदारनाथमिश्रोऽहं विवृणोमि समासतः ॥ २ ॥

१. शङ्कर ने पार्वती की प्रसन्नता के लिये उनके पदनख के सदृश बालचन्द्र को मस्तक पर धारण किया । यहीं पर कर्तृपद गुप्त है जो वर्ष भर खोजने पर भी नहीं मिलता ।

यहाँ कर्तृपद 'इहा' (इः कामः तं हन्ति इति 'इहा' शिवः) अर्थात् 'शिव' है । इसे खोजने के लिये 'इहैव' का विच्छेद 'इह + एव' न समझकर, 'इहा + एव' समझना होगा ॥ १ ॥

२. जिसने निरन्तर पुण्य किये हैं उसी का मन (अर्थात् केवल वही व्यक्ति)

शेषभूषं स्मराराति सोमं सोमार्द्धशेखरम् ।
त्र्यम्बकं नमतां बिभ्रद् गौरीशं नः पुनातु गाम् ॥ ३ ॥
अन्नवस्त्रसुवर्णानि रत्नानि विविधानि च ।
ब्राह्मणेभ्यो नदीतीरे ददाति व्रज सत्वरम् ॥ ४ ॥

शरत्कालीन चन्द्रमा और कुन्दपुष्प के समान शुभ्र कैलासवासी भगवान् शङ्कर को प्रसन्न कर पाता है। अर्थात् शिवभक्ति किसी पुण्यात्मा को ही मिलती है।

यहाँ कर्तृपद 'मनो' (मनः अर्थात् चित्त) है। इसे खोजने के लिए 'मनोहरं' को एक पद न समझकर, दो पद समझना होगा और 'मनो' को 'हरं' से अलग कर पढ़ना होगा।

३. शेषनाग को आभूषण के रूप में धारण करने वाले कामदेव के शत्रु शिर पर अर्द्धचन्द्र धारण करने वाले त्रिनेत्रधारी भगवान् शङ्कर को भगवती पार्वती के साथ अपनी पीठ पर वहन करने वाले नन्दी, प्रणाम करने वाले हम लोगों की वाणी को पवित्र करें।

यहाँ 'गौरीशं' को ('पार्वती के स्वामी' इस अर्थ का द्योतक, 'गौरी + ईशम्' इस प्रकार का विग्रह वाला एक पद न मानकर) 'गौः' और 'ईशम्' को अलग-अलग करके ('ईशं बिभ्रद् गौः नमतां नो गां पुनातु' इस प्रकार अन्वय करके) पढ़ने से कर्तृपद 'गौः' स्पष्ट हो जाता है। 'लक्ष्यदृष्ट्या स्त्रियां पुंसि गौः' इस अमर के कारण गोशब्द पुंलिंग भी है ॥३॥

४. वह धनी ब्राह्मण नदी के तट पर अन्न, वस्त्र, सुवर्ण और विविध रत्न दान कर रहा है, तुम भी शीघ्र जाओ।

यहाँ कर्तृपद 'ब्राह्मणेभ्यो' (ब्राह्मणश्चासाविभ्यश्च' अथवा ब्राह्मणेषु इभ्यः (धनी) "इभ्य आढ्यो धनी स्वामी" अमरकोष १०५५) अर्थात् ब्राह्मण धनिक है। इसे खोजने के लिये 'ब्राह्मणेभ्यो' पद को चतुर्थ्यन्त न समझकर समस्त पद समझना चाहिये ॥ ४ ॥

राक्षसेभ्यः सुतां हृत्वा जनकस्य पुरीं ययौ ।
अत्र कर्तृपदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥ ५ ॥
प्रमोदं जनयत्येव सदा-रा गृहमेधिनः ।
यदि धर्मश्च कामश्च भवेतां संगताविमौ ॥ ६ ॥

कर्मगुप्तम्

देवत्राहि सदा भक्त्या वयं वन्दामहे मुहुः ।
येषां कृपाकटाक्षेण सफलाः सर्वकामनाः ॥ ७ ॥

---

५. राक्षसों का स्वामी रावण जनकसुता सीता का अपहरण कर अपनी लङ्कापुरी को गया । यहाँ कर्तृपद गुप्त है उसे जानने वाला निश्चय ही पण्डित है।

यहाँ कर्तृपद 'राक्षसेभ्यः' (राक्षसानां इभ्यः (स्वामी), 'इभ्य आढ्यो धनी स्वामी' अ० को० १०५५) अर्थात् राक्षसों का स्वामी रावण है । इसे खोजने के लिये 'राक्षसेभ्यः' पद को चतुर्थ्यन्त न समझकर समस्त समझना होगा ॥ ५ ॥

६. यदि 'धर्म' और 'काम' से समन्वय (संगति-मेल) हो तो 'अर्थ' भी गृहस्थों को सदैव सुख देता ही है ।

यहाँ कर्तृपद 'राः' (=धन "अर्थरैविभवा अपि" अमरकोष ९७६) है। इसे खोजने के लिये सदारा को 'सदा' और 'रा' पदों को पृथक् करके पढ़ना चाहिये ॥ ६ ॥

७. हम देवताओं को—जिनके कृपाकटाक्ष से सारी कामनायें सफल हो जाती हैं सदैव अनेकशः भक्तिपूर्वक प्रणाम करते हैं ।

यहाँ 'देवत्राहि' को 'देव ! त्राहि' इस प्रकार पदच्छेद करके ('हे देव ! रक्षा करो' यह अर्थ समझकर) पढ़ने से द्वितीयान्त पद का पता

सुभग ! तवाननपङ्कजदर्शनसञ्जातनिर्भरप्रीतेः ।
शमयति कुर्वन् दिवसः पुण्यवतः कस्य रमणीयः ? ॥ ८ ॥
एहि हे रमणि ! पश्य कौतुकं धूलिधूसरतनुं दिगम्बरम् ।
सापि तद्वदनपङ्कजं पपौ श्रातरुक्तमपि किं न बुद्धयते ॥ ९ ॥

नहीं चलता। 'देवत्रा' और 'हि' को अलग-अलग करके पढ़ने से 'देवत्रा' (=देवताओं को) यह कर्मपद स्पष्ट हो जाता है। 'देव' शब्द से द्वितीयान्त 'देवान्' इस अर्थ में "देवमनुष्यपुरुषपुरुमर्त्येभ्यो द्वितीयासप्तम्योर्बहुलम्" ५।४।५६ इस सूत्र से 'त्रा' प्रत्यय होकर 'देवत्रा' (देवताओं को) यह रूप निष्पन्न होता है ॥ ७ ॥

८ हे सुन्दर ! वह रमणीय दिवस, तुम्हारे मुखकमल का दर्शन कर प्रसन्न होने वाले किस पुण्यात्मा को सुखी करता हुआ व्यतीत होता है ?

यहाँ कर्मवाचक पद 'शम्' (शं=सुखं ए० को०) गुप्त है। शम् को कुर्वन् से और दिवस को अयति से सम्बद्ध करने पर यह स्पष्ट हो जाता है ॥ ८ ॥

९. 'हे सुन्दरि ! इधर आओ, और भूमि पर खेलते हुए किसी के इस धूल धूसरित शिशु को देखो' यह कहने पर, उस सुन्दरी ने उस बच्चे के मुखकमल को चूम लिया। यहाँ कर्मपद का कथन कर दिया गया है फिर भी आप उसे क्यों नहीं समझ पाते ?

यहाँ गुप्त कर्मवाचक पद 'तुकं' (शिशु को) है। इसको समझने के लिये कौतुकं पद को कुतूहलार्थवाचक एक पद न मानकर, 'कौ' (भूमि पर) और 'तुकम्' (शिशु को) पृथक् पृथक् पढ़ना चाहिये ॥ ९ ॥

शीकरासारसंवाहिसरोजवनमारुतः ।
प्रक्षोभयति पान्थस्त्रीनिःश्वासैरिव मांसलः ॥१०॥
शरतल्पे शयानाय भीष्माय वलिसद्मनः ।
अनैषीद्वारिषुः स्फीतं पवित्रं सव्यसाचिनः ॥११॥

करणगुप्तम्

पूतिपङ्कमयेऽत्यर्थं कासारे दुःखिता अमी ।
दुर्वारा मानसं हंसा गमिष्यन्ति घनागमे ॥१२॥

---

१०. पथिकों की विरहाकुल पत्नियों के निश्वासों से पुष्ट हुआ सा यह प्रवल समीर (जलकणों की धारा वहन करनेवाले अर्थात्) जल से लवालव भरे तालाब को क्षुभित कर रहा है।

यहाँ गुप्त कर्मवाचक पद 'सरो' (तालाव को, 'कासारः सरसी सरः' अ० को० २८२) है। 'शीकरासारसंवाहि' को कर्मवाचक पद 'सरो' का विशेषण और 'जवनमारुतः' को प्रक्षोभयति क्रिया का कर्तृपद समझकर इसे खोजा जा सकता है ॥ १० ॥

११. सव्यसाची अर्जुन के द्वारा छोड़ा गया बाण शरशय्या पर लेटे भीष्म के लिये पाताल से निर्मल और पवित्र जल निकाल लाया।

यहाँ 'वार्' (जल 'वारी वारि रूप चलेंगे') पद कर्म है, जो 'इषुः वार् अनैषीत्' इस प्रकार पदच्छेद करके पढ़ने से मिल जाता है ॥ ११ ॥

१२. वर्षाकाल आने पर ये हंस गन्दे और कीचड़मय तालाव के कलुषित जल से अत्यधिक खिन्न होकर मानसरोवर को चले जायेंगे।

यहाँ गुप्त करणवाचक पद 'दुर्वारा' (=कलुषितवारिणा 'आपः स्त्री भूम्नि वार्वारि' अ० को० २५७) अर्थात् 'कलुषित् जल से' है। 'दुर्वारा' पद को हंसों के विशेषण 'अत्यर्थं दुःखिताः' से सम्बद्ध करने पर यह स्पष्ट हो जाता है ॥ १२ ॥

सम्प्रदानगुप्तम्

अम्भोरुहमये स्नात्वा वापीपयसि कामिनी ।
ददाति भक्तिसम्पन्ना पुत्रसौभाग्यकाम्यया ॥१३॥

अपादानगुप्तम्

दुराचारिबुधः श्लाघ्यः सच्चरित्रोऽबुधोऽपि चेत् ।
ब्रुवन्तु पाठका अत्र गुप्तं पञ्चमकारकम् ॥१४॥

---

१३. यह भक्ति से युक्त कामिनी स्त्री वापी के जल में स्नान कर पुत्र और सौभाग्य की कामना से कामदेव को कमल पुष्प चढ़ा रही है।

यहाँ 'अये' (=कामदेव के लिए, 'इकार उच्यते कामः' ए० को०) यह पद सम्प्रदान है। 'इ' (=कामदेव) शब्द से "घेर्ङिति" ६।३।१११ से गुण होकर चतुर्थी एकवचन में 'अये' रूप निष्पन्न हो रहा है। अम्भोरुहमये को वापीपयसि का विशेषण भूत एक पद न मानकर अम्भोरुहम् (=कमलम्) और अये (कामदेवाय, ददाति) यह पदच्छेद कर, 'अम्भोरुहम्' को द्वितीयान्त और 'अये' को चतुर्थ्यन्त समझा जाय तो सम्प्रदान स्पष्ट हो जाता है ॥ १३ ॥

१४. सच्चरित्र व्यक्ति यदि पण्डित न भी हो तो भी दुराचारी विद्वान् से अच्छा है। यहाँ जिस पद में अपादानकारक है उसका निर्देश पाठक करें।

क्विबन्त बुध् धातु से निष्पन्न हलन्त 'बुध्' शब्द का पञ्चम्यन्त रूप 'बुधः' होता है। इस प्रकार 'दुराचारिबुधः' पद यहाँ पञ्चम्यन्त है, जिसे प्रथमान्त समझ लेने से 'दुराचारी विद्वान् श्लाघ्य है' इस अनिष्ट अर्थ की प्रतीति होने लगती है ॥ १४ ॥

शिलीमुखैस्त्वया वीर! दुर्वारैर्निर्जितो रिपुः।
बिभेत्यत्यन्तमलिनो वनेऽपि कुसुमाकुले ॥१५॥

सम्बन्धगुप्तम्

भानुर्वै जायते लक्ष्म्या सरस्वत्याथवा मता।
अत्र षष्ठीपदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥१६॥

---

१५. हे वीर! तुम्हारे दुःसह 'शिलीमुखों' (=वाणों) से पराजित शत्रु, पुष्पवहुल वन में भी, 'शिलीमुखों' (=भ्रमरों) से (नामसाम्य के कारण) भयभीत होता है।

यहाँ 'अलिनो' पद अपादानगुप्त है। अत्यन्तमलिनो, रिपुः का विशेषण नहीं है वरन् अत्यन्तम्, विभेति क्रिया का विशेषण है और 'अलिनो' (=अलि से) भयहेतुरूप अपादान ('भीत्रार्थानां भयहेतुः' १।४।२५) है॥ १५॥

१६. अभीष्ट तेज, मनुष्य को लक्ष्मी (सम्पत्ति) अथवा सरस्वती (विद्या) से प्राप्त होता है! यहाँ षष्ठी पद गुप्त है, उसे जो जानते हैं, वे निश्चय ही पण्डित हैं।

यहाँ 'नुः' (=नरस्य, 'पुरुषाः पूरुषा नरः' अ० को० ५६४) षष्ठी पद है। पुरुषवाचक ऋदन्त नृ शब्द से 'ऋत उत्' ६।१।१११ से उत्व होकर षष्ठी एकवचन में 'नुः' यह रूप निष्पन्न होता है। भानुः को एक पद न समझ कर नुः (=नरस्य) मता (=अभीष्टा) भा (=शोभा) लक्ष्म्या (=श्रिया) अथवा सरस्वत्या (=विद्यया) जायते (भवति)। इस प्रकार अन्वय करने पर 'नुः' में गुप्त षष्ठी स्पष्ट हो जाती है॥ १६॥

नाकर्णितो मयादेशः तेन दण्डं स लब्धवान् ।
वैयाकरणमूर्धन्य ! षष्ठीमत्र प्रदर्शय ॥१७॥
प्राप्तमदो मधुमासः प्रबला रुक् प्रियतमोऽपि दूरस्थः ।
असती संनिहितेयं संहृतशीला सखी नियतम् ॥१८॥

अधिकरणगुप्तम्

अनुकम्पितदिग्वक्त्रोऽयुग्मवक्त्रोऽयुगेक्षणः ।

---

१७. उसने मेरा आदेश नहीं सुना ('मे आदेशः' न आकर्णितः) अतः उसे दण्ड मिला। व्याकरण वेत्ता इस वाक्य में गुप्त षष्ठी विभक्ति का निर्देश करें।

यहाँ 'मे' यह षष्ठी विभक्ति का रूप है। 'आदेशः' के साथ सन्धि हो जाने से 'मयादेशः' पद निष्पन्न हुआ है (जिसे 'मया' 'आदेशः' इस प्रकार पदच्छेद करके पढ़ने से अनभीष्ट अर्थ की प्रतीति होती है)। 'मे + आदेशः' इस स्थिति में 'एचोऽयवायावः' ६।१।७८। से 'अय्' आदेश होकर 'मयादेशः' यह रूप बनता है। 'लोपः शाकल्यस्य' ८।३।१९ इस सूत्र से अय् आदेश के यकार का लोप विकल्प से होता है अतः यहाँ यकार का लोप न करने में कोई दोष नहीं है ॥ १७ ॥

१८. चन्द्रमा का मधु (चाँदनी) बरस रहा है, मेरी कामपीड़ा प्रबल है, पति भी दूर है और मेरी समीपस्थ यह सखी निश्चय ही आचरणहीन तथा कुलटा है (अतः विवश होकर मुझे उपपति का आश्रय लेना ही होगा)।

यहाँ 'मासः' गुप्त षष्ठीपद है। यह चन्द्रमावाचक 'मास्' शब्द के षष्ठी एकवचन का रूप है। 'उत्पलिनी कोश' के अनुसार चन्द्रमा के लिये (मिमीते आनन्दमिति माः) मास् शब्द का प्रयोग बुधसम्मत है, 'मास शब्दः केवलोऽपीह संमतो बहुदृश्वनाम्' ॥ १८ ॥

गङ्गाश्रितजटाजूटो गिरीशो वसतान्मुहुः ॥१९॥
विपद्यमानता सिद्धा सर्वस्यैव निरूष्मणः ।
यथात्र भस्म पद्भ्यां च निर्वाणं हन्त्ययं जनः ॥२०॥

सम्बोधनगुप्तम्

पिबतस्ते शरावेण वारि कह्लारशीतलम् ।
केनेमौ दुर्विदग्धेन हृदये सन्निरोपितौ ? ॥२१॥

---

१९. रावण (दिग्वक्त्र:=दशमुख) पर अनुग्रह करनेवाले, पञ्चमुख, त्रिनेत्रधारी और अपने जटाजूट में गङ्गा को धारण करनेवाले भगवान् शिव (मेरी) वाणी में निवास करें।

यहाँ 'गिरीशो' (=शिव) पद को कर्ता (प्रथमान्त) मान लेने पर वाक्य में 'वसतात्' क्रिया के अधिकरण का पता नहीं चलता। 'गिरि' और 'ईशो' (शिव:) पदों को अलग-अलग करके पढ़ने पर अधिकरण 'गिरि' (वाणी में) मिल जाता है ॥ १९ ॥

२०. आपत्तिकाल में सभी तेजहीन व्यक्तियों का अनादर ('अमानता') होता है। बुझी राख को लोग पैरों से कुचलते हैं।

यहाँ 'विपदि' (आपत्ति में) अधिकरणगुप्त पद है। 'विपद्यमोनता' को एक पद न समझ कर विपदि को सिद्धा क्रियार्थक सुवन्त शब्द के कर्तृपद 'अमानता' (=अवहेलना) से पृथक् करके पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है ॥ २० ॥

२१. हे हरिण ! सुगन्धित पुष्पों से शीतल जल पीते हुए तुम्हारे हृदय में किस दुष्ट ने ये दो वाण वेध दिये ?

यहाँ 'एण' (=हे हरिण !) यह सम्बोधनपद गुप्त है, जो 'शरौ' और 'एण' को पृथक्-पृथक् कर के समझने पर स्पष्ट हो जाता है ॥ २१ ॥

वटवृक्षो महानेष मार्गमावृत्य तिष्ठति ।
तावत्त्वया न गन्तव्यं यावन्नान्यत्र गच्छति ॥२२॥

सन्धिगुप्तम्

न मयागोरसाभिज्ञं चेतः कस्मात्प्रकुप्यसि ? ।
अस्थानरुदितैरेतैरलमालोहितेक्षणे ! ॥२३॥

लिङ्गगुप्तम्

नितान्तस्वच्छहृदयं सखि ! प्रेयान् समागतः ।
त्वां चिरादर्शनप्रीत्या यः समालिङ्ग्य रंस्यते ॥२४॥

---

२२. हे बालक ('बटो') यह विशालकाय रीछ ('ऋक्षो' बरगद का पेड़ नहीं) रास्ता रोके खड़ा है, जब तक यह अन्यत्र न चला जाय, तुम मत जाओ ।

यहाँ 'वटो' (हे बालक) यह संबोधनगुप्त पद है, जो 'बटवृक्षो' का अर्थ बरगद का पेड़ न समझकर बटो और ऋक्षो (ऐसी स्थिति में 'एचोऽयवायाव:' से 'अव्' हुआ है) को पृथक्-पृथक् करके समझने से स्पष्ट हो जाता है ॥ २२ ॥

२३. हे क्रोध से लाल हो रहे नेत्रों वाली सुन्दरि ! मेरा हृदय ('मे चेत:') अपराध के रस से परिचित नहीं ('आगोरसाभिज्ञं न') है, मैं अपराधी ('आगोऽपराधो मन्तुश्च' अ० को० ७९२) नहीं हूँ, तुम क्यों क्रुद्ध हो रही हो, व्यर्थ में मत रोओ ।

यहाँ 'मे+आगोरसाभिज्ञं' इस स्थिति के 'एचोऽयवायाव: '६।१।१८ से अय् आदेश होकर 'मयागोरसाभिज्ञं' यह सन्धिघटित रूप निष्पन्न हुआ है। वैकल्पिक होने से यहाँ यलोप नहीं हुआ है ॥ २३ ॥

२४. हे सखि ! अत्यन्त निर्मल हृदयवाले (नितान्त- स्वच्छहृत्) तुम्हारे यह प्रियतम (अयं प्रेयान्), जो तुम्हें बहुत अधिक दिनों के बाद देखने

क्रियागुप्तम्

जानकी-जानकीजानी श्रद्धयाभक्त लक्ष्मणः ।
भाव ! भावोऽस्य को गूढो ब्रूहि चेदवगच्छसि ॥२५॥
प्रातः प्रातः समुत्थाय द्वौ मुनी च कमण्डलू ।
अत्र क्रियापदं वक्तुमवधिर्ब्रह्मणो वयः ॥२६॥

के कारण उत्पन्न हुए प्रेमातिशय से तुम्हारा आलिङ्गन कर स्मरण करेंगे, आ गये ।

यहाँ 'नितान्तस्वच्छहृदयं' यह आपाततः क्रियाविशेषण सा प्रतीत होता है, पर प्रेयान् के विशेषण 'नितान्तस्वच्छहृत्' और सर्वनाम 'अयं' को पदच्छेद करके पढ़ने से गुप्त लिङ्ग स्पष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

२५. लक्ष्मण ने श्रद्धापूर्वक ('श्रद्धया') सीता और राम (जानकी जाया यस्य, असौ 'जानकीजानिः' जानकी च स चेति द्वन्द्वः) की सेवा की (अभक्त, भज सेवायाम् धातु का लुङ् लकार में प्रथम पुरुष एकवचन का रूप) । हे भद्रपुरुष ('भाव !') इस वाक्य में गुप्त भाव को यदि आप जानते हों तो बतावें ।

यहाँ 'अभक्त' (सेवा की) यह क्रियापद है जो श्रद्धया और अभक्त को अलग-अलग करके पढ़ने से (न कि 'भक्त' शब्द को 'लक्ष्मणः' पद का विशेषण मान लेने से) मिलता है ॥ २५ ॥

२६. प्रातः उठाकर दो मुनि कमण्डलु भरते हैं । इस पद्य की क्रिया का पता ब्रह्मा की आयु बीत जाने पर भी नहीं लगाया जा सकता ।

यहाँ 'प्रातः' (=भरते हैं) यह क्रियापद है । प्रा पूरणे, धातु से लट् लकार, प्रथम पुरुष द्विवचन में 'प्रातः' यह रूप निष्पन्न होता है ॥ २६ ॥

पम्पासरसि रामेण सस्नेहंसविलासया ।
सीतया किं कृतं सार्द्धमत्रैवोत्तरमीक्ष्यताम् ॥२७॥
कान्तया कान्तसंयोगे किमकारि नवोढया ? ।
अत्रापि चोत्तरं वक्तुमवधिर्ब्रह्मणो वयः ॥२८॥
पतितैः सलिले सिन्धोः किं कृतं तैलबिन्दुभिः ?
अत्रापि चोत्तरं वक्तुं वेलाऽऽयुर्ब्रह्मणो मता ॥२९॥

---

२७. पम्पा सरोवर पर राम ने विलासवती (सविलासया) सीता के साथ स्नेहपूर्वक (सस्नेहं) क्या किया ? इसका उत्तर इसी श्लोक में खोजिये ।

यहाँ सस्ने (ष्णा शौचे का लिट् में रूप) अर्थात् स्नान किया यह उत्तर है । 'सस्नेहंसविलासया सीतया' का पदच्छेद 'सस्नेहं सविलासया सीतया' न करके, 'सस्ने (स्नान किया) हंसविलासया सीतया' (हंसगामिनी सीता के साथ) करने से उत्तर मिल जाता है ॥२७॥

२८. प्रियतम से संयोग होने पर नवोढा सुन्दरी ने क्या किया ? यहाँ भी उत्तर खोजने में ब्रह्माकी आयु सीमा है ।

यहाँ अत्रापि ('त्रपूष् लज्जायाम्' से भाव में लुङ् का रूप) अर्थात् लज्जित हुई, यह उत्तर है । अत्रापि को अत्र और अपि (=यहाँ अर्थात् इस श्लोक में भी) शब्दों से घटित न मान कर लज्जार्थक 'त्रपूष् धातु' का लुङ् का रूप मान लेने से उत्तर मिल जाता है ॥ २८ ॥

२९. नदी के जल में गिरी तेल की बूँदों ने क्या किया ? यहाँ भी उत्तर देने (अर्थात् क्रियापद खोजने) में ब्रह्मा की आयु भर का (अर्थात् बहुत अधिक) समय बीत जायेगा ।

यहाँ अत्रापि को अत्र और आपि (व्याप्त्यर्थक 'आप्लृ' धातु का लुङ् का रूप) इस प्रकार अलग-अलग करके पढ़ने से 'आपि' यह क्रियापद मिल जाता है (अर्थात् तेल की बूँदें तट तक फैल गई 'तैलबिन्दुभिः वेला आपि') ।

पुंस्कोकिलकुलस्यैते नितान्तमधुरारवैः ।
सहकारद्रुमा रम्या वसन्ते काममपि श्रियम् ॥३०॥
बिम्बाकारं सुधाधारं कान्तावदनपङ्कजम् ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं मर्यादा दशवार्षिकी ॥ ३१ ॥

यहाँ वेला शब्द आवृत्ति द्वारा आयुरूप काल और तट दोनों अर्थों का बोधक है ('अब्ध्यम्बुविकृतौ वेला कालमर्यादयोरपि'—अ० को० १४०७) तथा उत्तर देने की 'अवधि एवं व्याप्ति' क्रिया दोनों से सम्बद्ध है ॥ २९ ॥

३०. वसन्त में इन सुन्दर आम के पेड़ों ने कोकिल-समूह की ध्वनि से किसी लोकोत्तर शोभा को धारण किया ।

यहाँ 'नितान्तमधुरारवैः' का अर्थ आपाततः 'अति मधुर ध्वनियों से' प्रतीत होता है और क्रियापद का पता नहीं चलता । नितान्तम् (अत्यधिक) 'अधुः' (=धारण किया, 'डुधाञ् धारणपोषणयोः' धातु का लुङ् का रूप) और आरवैः (ध्वनियों से) यह पदच्छेद करने से 'अधुः' अर्थात् धारण किया यह क्रियापद मिल जाता है ॥ ३० ॥

३१. बिम्ब के से आकारवाले और अमृत के आश्रय (अधरामृत की निधि), प्रेयसी के मुखकमल का चुम्बन कीजिये । यहाँ क्रियापद गुप्त है, उसे खोज निकालने की अवधि वर्ष भर है ।

इस पद्य में 'मर्यादा दशवार्षिकी' का अर्थ आपाततः 'दश वर्ष की अवधि' प्रतीत होता है और क्रियापद का पता नहीं चलता । 'दश' और 'वार्षिकी' को पदच्छेद करके पढ़ने तथा मर्यादा को वार्षिकी से

राघवस्य शरैर्घोरैर्घोररावणमाहवे ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥३२॥
पामारोगाभिभूतस्य श्लेष्मव्याधिनिपीडित ।
यदि ते जीवितस्येच्छा तदा भोः शीतलं जलम् ॥३३॥

सम्बद्ध कर देने पर दश (=चुम्बस्व, चुम्बन कीजिये) यह क्रियापद मिल जाता है ॥ ३१ ॥

३२. हे राघव ! घोर बाणों से भयङ्कर रावण को युद्ध में मार डालिये। इस श्लोक में क्रियापद गुप्त है, उसे जाननेवाला निश्चय ही पण्डित है।

यहाँ स्य ('षोऽन्तकर्मणि' धातु के लोट् लकार में मध्यम पुरुष एकवचन का रूप) अर्थात् 'मार डालिये' यह क्रियापद है, जो राघवस्य को षष्ठ्यन्त एक पद न समझ कर 'राघव !' और 'स्य' यह पदच्छेद करके पढ़ने से मिल जाता है ॥ ३२ ॥

३३. हे श्लेष्मा (जुकाम) रोग से पीडित रोगी, यदि रोगग्रस्त तुम जीना चाहते हो तो ठंडा पानी मत पियो।

आपाततः यहाँ पामारोगाभिभूतस्य ते यदि जीवितस्येच्छा यह अन्वय और पामा (=विर्चाचिका) रोग से अभिभूत तुम यदि जीना चाहते हो—यह अर्थ प्रतीत होता है तथा क्रियापद का पता नहीं चलता। रोगाभिभूतस्य ते यदि जीवितस्येच्छा (रोगग्रस्त तुम यदि जीना चाहते हो) यह पदच्छेद करके, पा मा को शीतलं जलं से सम्बद्ध करने पर ठण्डा जल मत पियो (('मा पाः' 'पा-पाने' के लुङ् में मध्यम पुरुष के एकवचन में 'अपाः' रूप होता है। यहाँ 'माङ् के योग होने के कारण 'अ' का निषेध हुआ है) यही क्रियापद मिल जाता है ॥ ३३ ॥

कान्तं विना नदीतीरंमदमालोक्य केकिनी ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥३४॥
विराटनगरे रम्ये कीचकादुपकीचकम् ।
अत्र क्रियापदं गुप्तं यो जानाति स पण्डितः ॥३५॥
क्रीडताशिशुना साकं स्तनपेन मृदेकदा ।
अयुतेनापि वर्षाणां क्रिया चात्र सुदुर्लभा ॥३६॥

---

३४. मयूर की वियोगिनी मयूरी, मेघज्योति देखकर प्रेमविह्वल होकर, बार-बार कूज रही है। इस श्लोक में क्रियापद गुप्त है, उसे जो जानता है वह निश्चय ही पण्डित है।

'नदीतीरंमदमालोक्य' पढ़ने से आपाततः नदी के किनारे यह अर्थ प्रतीत होता है और मुख्य क्रिया का पता नहीं चलता। 'नदीति इरंमदम् आलोक्य' यह पदच्छेद करके पढ़ने से इरंमद ('मेघज्योतिरिरंमदः' अ० का० ९३) को देखकर (नदीति=) बार-बार शब्द करती है या कूजती है, यह अर्थ स्पष्ट हो जाता है ॥ ३४ ॥

३५. सुन्दर नगर में पक्षी एक बांस से दूसरे बाँस के समीप गया अर्थात् उड़ा। इस श्लोक में क्रियापद गुप्त है, उसे जो जानता है वह निश्चय ही पण्डित है।

यहाँ विराटनगरे का अर्थ आपाततः विराट नगर में प्रतीत होता है और क्रियापद का पता नहीं चलता, पर 'विः' (पक्षी 'विविष्करपतत्रयः' अ० को० ५५३) 'आट' (=गया, उड़ा, 'अट-पट गतौ' धातु से लिट् लकार प्रथम पुरुष एकवचन में निष्पन्न रूप) यह पदच्छेद करने से गया या उड़ा यह क्रियापद मिल जाता है ॥ ३५ ॥

३६. स्तन्यपायी बच्चे ने एक दिन कुत्ते के साथ खेलते हुए मिट्टी खा ली। इस वाक्य का क्रियापद हजार वर्षों में खोज सकना भी दुष्कर है।

अशुद्धिगुप्तम्

शामं, सीतां, लक्ष्मणं जीविकार्थे
विक्रीणीते यो नरस्तं च धिग् धिक्।
अस्मिन् पद्ये योऽपशब्दान्न वेत्ति
व्यर्थप्रज्ञं पण्डितं तं च धिग् धिक् ॥३७॥

कूटपद्यानि

अम्बरमम्बुनि पत्रमरातिः पीतमहीनगणस्य ददाह।
यस्य वधूस्तनयं गृहमब्जा पातु स वो हरलोचनवह्निः ॥३८॥

यहाँ 'क्रीडता-आशि, शुना साकं' इस प्रकार पदच्छेद कर 'कुत्ते' के साथ खेलते हुए (मृत्तिका) खा ली (आशि=अश् भोजने धातु से कर्मणि लुङ्)' यह अर्थ और 'आशि' (=खा लिया) क्रिया स्पष्ट हो जाती है, जिसे 'शिशुना साकं क्रीडता' इस प्रकार अन्वय करके पढ़ने पर खोज सकना असम्भव है ॥ ३६ ॥

३७. जो व्यक्ति जीविकोपार्जन के लिये राम, सीता और लक्ष्मण (की प्रतिकृतियों) को बेचता है उसे धिक्कार है, तथा जो इस पद्य में आई अशुद्धियों को नहीं जानता, उस व्यर्थ बुद्धि वाले पण्डित को भी धिक्कार है।

यहाँ 'रामं, सीतां, लक्ष्मणं' प्रयोग अशुद्ध हैं। 'इवे प्रतिकृतौ' ५।३।३९ से होने वाले कन् का लोप 'जीविकार्थे चापण्ये' ५।३।९९ सूत्र से अपण्यस्थल पर ही होता है, प्रकृत स्थल में पण्यप्रसंग होने से लोप की प्रसक्ति न होगी और शुद्ध प्रयोग 'रामकं सीतकां लक्ष्मणकम्' होंगे ॥ ३७ ॥

३८. जिसका वस्त्र पीला है ('यस्य अम्बरं पीतं') जिसका घर जल में है

गौरीक्षणं भूधरजाहिनाथः पत्रं तृतीयं दयितोपवीतम् ।
यस्याम्बरं द्वादशलोचनाख्यः काष्ठाः सुतः पातु सदाशिवो वः ।३९।
राजन् ! कमलपत्राक्ष ! तत्ते भवतु चाक्षयम् ।
आसादयति यद्रूपं करेणुः करणैर्विना ॥४०॥
विषं भुङ्क्ष्व महाराज ! स्वजनैः परिवारितः ।
विना केन विना नाभ्यां कृष्णाजिनमकण्टकम् ॥४१॥

('यस्य गृहम् अम्बुनि'), जिसका वाहन सर्पराजों का शत्रु गरुड है ('अहीनगणस्य अरातिः यस्य पत्रम्'), जिसकी पत्नी लक्ष्मी है ('यस्य वधूः अब्जा') और जिसके पुत्र कामदेव को शंकर के तृतीय नेत्र की अग्नि ने भस्म कर दिया था ('यस्य तनयं हरलोचनवह्निः ददाह'), वह विष्णु आपकी रक्षा करें ('स वः पातु') ॥ ३८ ॥

३९. जिसका वाहन वृषभ है ('यस्य गौः पत्रम्,' 'पत्रं वाहनपक्षयोः' अ०को० १३८७), जिसका तीसरा नेत्र है ('यस्य तृतीयं ईक्षणम्'), पार्वती जिसकी पत्नी हैं ('यस्य दयिता भूधरजा'), सर्पराज जिसके उपवीत हैं ('यस्य उपवीतम् अहिनाथः'), दिशाएँ ही जिसके वस्त्र हैं ('यस्य अम्बरं काष्ठाः') और षण्मुख कार्तिकेय जिसके पुत्र हैं ('यस्य सुतः द्वादशलोचनाख्यः') वह शङ्कर आपकी रक्षा करें ('सः सदाशिवः वः पातु') ॥ ३९ ॥

४०. हे कमल के समान नेत्रों वाले राजन् ! क् , र् , और ण् से रहित 'करेणु' शब्द का जो रूप होता है वह अर्थात् (अ + ए = ऐ + उः = आयुः) आपकी आयु अक्षय हो ॥ ४०॥

४१. आपाततः प्रतीयमान अर्थ, हे राजन् ! आप सपरिवार विष खा लीजिये, असंसगत है, गूढार्थ यह होगा—

हे महाराज ! आप सपरिवार क् रहित ('विना केन') ष् रहित ('विषं') और नकार द्वय अर्थात् ण् और न् रहित ('विना नाभ्यां') निष्कण्टक

द्वन्द्वो द्विगुरपि चाहं, मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः ।
तत्पुरुष कर्मधारय येनाहं स्यां बहुव्रीहिः ॥४२॥
वासुदेवो निराकारः पूजनीयोऽस्ति किं क्वचित् ।
वसुदेवो हि साकारः पूजनीयः सदा जनैः ॥४३॥

कृष्णाजिन अर्थात् राज्य (कृष्णाजिनम्—क्—ष्—ण्—न् वर्णों से रहित= ऋ+आ+जि+अम्=राज्यम्) भोगिये ॥ ४१ ॥

४२. राजा या किसी धनी व्यक्ति के सामने कोई विद्वान् (कविकण्ठाभरण के अनुसार भट्ट मुक्तिकलश) छहों समासों के नामोद्देश के बहाने अपनी दरिद्रता का वर्णन और उसके दूर करने का अनुरोध कर रहा है। हम पति-पत्नी दो प्राणी ('द्वन्द्वो') हैं, एक गाय और एक बैल भी है ('द्विगुरपि चाहं'), घर में व्ययका सदा अभाव रहता है, कुछ है ही नहीं तो व्यय क्या हो ('मद्गेहे नित्यमव्ययीभावः') ? इसलिये हे राजन् या हे पुरुष (पुरुष) ! कुछ ऐसा कर दो ('तत् कर्म धारय') जिससे मैं धनधान्य-सम्पन्न हो जाऊँ ('येनाहं स्यां बहुव्रीहिः') । यहाँ द्वन्द्व, द्विगु, अव्ययीभाव, तत्पुरुष, कर्मधारय और बहुव्रीहि शब्द, समासों के नाम के सूचक न होकर क्रमशः, युगल (पति-पत्नी), दो गायों या एक गाय एक बैल ('द्वे अथवा द्वौ गावौ यस्य सः' 'द्विगुः' शब्द निष्पन्न हुआ है), व्यय का अभाव, हे पुरुष ! वह कर्म करो, और बहुत धान्य वाला— इन अर्थों के द्योतक हैं ॥ ४२ ॥

४३. आपाततः प्रतीयमान अर्थ—भला कहीं निराकार वासुदेव की भी पूजा होती है ? लोगों को सदैव साकार वासुदेव की पूजा करनी चाहिये । गूढार्थः— आकार रहित वासुदेव (=वसुदेव) भी भला कहीं पूजित होते हैं ?' पूजा तो लोग सदा अकारसहित वसुदेव (=वासुदेव) 'निराकारः' और 'साकारः' पदों का अर्थ 'मूर्ति या शरीर रहित' और 'शरीरी या विग्रहवान्'

कुन्दकुञ्जममुं पश्य सरसीरुहलोचने !
अमुना कुन्दकुञ्जेन सखि ! मे किं प्रयोजनम् ? ॥४४॥
पानीयं पातुमिच्छामि त्वत्तः कमललोचने !
यदि दास्यसि न पास्यामि, नो दास्यसि पिबाम्यहम् ॥४५॥

न करके क्रमशः 'आ'कार ('आ' अक्षर) रहित और 'अ'कार सहित ('अ' अक्षरयुक्त) करने से गूढ़ार्थ स्पष्ट हो जाता है ॥ ४३ ॥

४४. हे कमल के समान नेत्रों वाली ! उस कुन्द-कुञ्ज को ('अमुं कुन्द-कुञ्जं') देखो। हे सखि ! 'मु' विहीन (आपाततः प्रतीयमान अर्थ) उस कुन्द-कुञ्ज से मुझे क्या मतलव ? मुझे तो मु सहित कुन्दकुञ्ज अर्थात् मुकुन्दकुञ्ज की तलाश है।

यह प्रथम चरण के अमुं शब्द (द्वितीया एकवचन का रूप) का अर्थ है उसको। पर तृतीय चरण वोलने वाली सखी ने उसका अर्थ मु विहीन लगाया, अतः तृतीय चरणस्थ अमुना शब्द का अर्थ उससे न होकर 'मु विहीन से' है। मु सहित कुन्दकुञ्ज 'मुकुन्दकुञ्ज' होता है ॥ ४४ ॥

४५. हे कमल के से नेत्रों वाली ! मैं तुम्हारे हाथ से जल पीना चाहता हूँ। यदि तुम दोगी ('यदि दास्यसि') तो न पीऊँगा और यदि न दोगी ('नो दास्यसि') तो पी लूँगा।

यहाँ दोगी तो न पीऊँगा और न दोगी तो पी लूँगा, यह कथन असंगत लगता है। दास्यसि का दासी+असि यह पदच्छेद कर के, यदि तुम दासी (=शूद्रस्त्री) हो तो मैं तुम्हारे हाथ का जल न पीऊँगा और यदि दासी नहीं हो तो पी लूँगा यह अर्थ करने से असंगति दूर हो जाती है ॥ ४५ ॥

एकोना विंशतिः स्त्रीणां स्नानार्थं सरयूं गता ।
विंशतिः पुनरायाता चैको व्याघ्रेण भक्षितः ॥४६॥
देवराजो मया दृष्टो वारिवारणमस्तके ।
भक्षयित्वार्कपर्णानि विषं पीत्वा क्षयं गतः ॥४७॥

---

४६. एक पुरुष ('एको ना') और बीस स्त्रियाँ ('विशंतिः स्त्रीणां') स्नान करने सरयू नदी को गईं। एक को तो व्याघ्र ने खा लिया, शेष बीस लौट आईं।

एकोना विंशतिः का अर्थ आपाततः एक कम बीस अथवा उन्नीस प्रतीत होता है और उन्नीस स्त्रियों का जाना तथा एक के व्याघ्र द्वारा खा लिये जाने के वाद वीस का लौटना असंगत लगता है। ना को पुरुषवाचक नृ शब्द का प्रथमा एकवचन का रूप मानकर 'एको ना' यह पदच्छेद कर, एक पुरुष और बीस स्त्रियाँ यह अर्थ करने पर असंगति दूर हो जाती है ॥ ४६ ॥

४७. आपाततः प्रतीयमान अर्थ—मैंने पुल पर देवराज इन्द्रको देखा। अर्क के पत्ते खाकर और विष पीकर ('विषं पीत्वा') वह नष्ट हो गया ('क्षयं गतः')।

गूढार्थ–देवर ! (=देवर), मैंने पुल पर बकरे को देखा ('वारिवारण-मस्तके अजो मया दृष्टः')। वह अर्क (धतूर) के पत्ते खाकर और जल पीकर ('विषं पीत्वा' 'गरले विषमम्भसि च' अमरकोश की भानुजी दीक्षित कृत व्याख्या) अपने निवासस्थान को चला गया (क्षयं गतः, 'क्षयो गेहे च कल्पान्ते', हैमः)।

यहाँ देवराजो को इन्द्रवाचक एक शब्द न मान कर 'देवर और अजः' यह पदच्छेद करने तथा तथा विष का अर्थ जल और क्षय का अर्थ घर करने से अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति होती है ॥ ४७ ॥

समरे हेमरेखाङ्कं बाणं मुञ्चति राघवे।
स रावणोऽपि मुमुचे मध्ये रीतिधरं शरम् ॥४८॥

अयि सखि शस्तः सखिवत्पति-
रिति किं त्वं न जानासि ?
शस्तोऽतिसखिवदुपपतिरित्यालि
कथं त्वयापि नाबोधि ? ॥४९॥

---

४८. युद्धस्थल में राम के स्वर्णरेखाङ्कित बाण छोड़ते ही, रावण ने भी शरीर छोड़ दिया।

आपाततः यहाँ 'मध्ये रीतिधरं शरं' का अर्थ 'ऐसा बाण जिसके मध्य-भाग मे पीतल ('रीतिः स्त्रियाँ स्यन्दप्रचारयोः। पित्तले लोहकिट्टे च', मेदिनी) लगी हो' होता है, किन्तु अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति मध्ये रीतिधरं शरं का अर्थ। (मध्ये 'रा' इति वर्णधरं शरं, अर्थात् शरीरं) मध्य में री अक्षर वाला शर शब्द अर्थात् शरीर करने से होती है॥ ४८॥

४९. अपाततः प्रतीयमान अर्थ—

एक सखी अपनी दूसरी सखी से पूछ रही है—हे सखि! जैसे शास्त्रों में मित्र की प्रशंसा ('केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम्' इत्यादि कह कर) की गई है, वैसे ही पति की प्रशंसा भी ('पतिरेव परः स्त्रीणाम्' इत्यादि कहकर) की गई है। क्या तुम्हें यह नहीं मालूम है, (जो तुम पति के विरुद्ध बात कर रही हो ?) दूसरी सखी उत्तर देती हुई पूछती है—हे सखि! जैसे अत्यधिक प्रिय मित्र की प्रशंसा की गई है वैसे ही उपपति या जार की भी प्रशंसा ('सुभगं

मञ्जुलघौ सम्भावितगणे क्वचिन्नापदाधारे ।
अयि सखि ! तत्रोपपतौ मम चेतो न त्वनीदृशे पत्यौ ।।५०।।

वदति जनस्तं निजपतिरिति नैष रोचते मह्यम्' अर्थात् लोग उसे सुन्दर बताते हैं, पर अपने पति होने के कारण वह मुझे (स्वैरिणी को) अच्छा नहीं लगता, आदि कह कर) की गई है । क्या पति-प्रशंसा की पण्डित होती हुई भी तुम यह नहीं जानतीं ?

गूढार्थ—हे सखि ! क्या तुम्हें यह नहीं मालूम कि पति शब्द के रूप शस् प्रत्यय (द्वितीया बहुवचन) से सखि शब्द के रूपों के समान ही चलते हैं ? दूसरी सखी उत्तर में पूछती है—हे सखि ! क्या तुम्हें नहीं मालूम कि उपपति शब्द के रूप शस् प्रत्यय (द्वितीया बहुवचन) से अतिसखि शब्द के रूपों के ही समान चलते हैं ।। ४९ ।।

५०. आपाततः प्रतीयमान अर्थ—हे सखि ! मेरा मन तो 'उपपति' में जो सुन्दर और ('मनोज्ञं मञ्जु मञ्जुलम्' अ० को० १०९७) मेरा अभीष्ट ('त्रिष्विष्टेऽल्पे लघुः' अ. को. १२३३) है, जिसके गुणों का आदर होता है ('संभावितगुणे') तथा जो कभी विपत्तिग्रस्त नहीं होता ('क्वचिन्नापदाधारे'), लगा है, इन गुणों से हीन 'पति' में नहीं ।

गूढार्थ—हे सखि ! मेरे मन में उपपति शब्द है, जिसमें 'पतिः समास एव' १।४।८ से होने वाली सुन्दर 'घि' संज्ञा होती है ('मञ्जुलघौ'), जिसमें 'घेर्ङिति' ७।३।१११ से गुण ('अदेङ्गुणः' १।१।२) सम्पादित होता है ('सम्भावितगुणे'), तथा जो तृतीया एकवचन में (क्वचित्) 'आङो नाऽस्त्रियाम्' ७ । ३ । १२० से होने वाले 'ना' पद का विषय बनता है ('ना-पदाधारे') न कि पति-शब्द जिसमें यह सब अर्थात् घि संज्ञा, गुण, ना इत्यादि कुछ नहीं होता ।। ५० ।।

यतिरतीव धनी सुभगो युवा परविलासवतीषु पराङ्मुखः ।
शिशुरलङ्करुते भवनं सदा तदपि सा सुदती रुदती कुतः ? ॥५१॥

पाने च देहे प्रमुखं कमाहुः ?
कः शीघ्रगामी ? नभसो मणिः कः ?
कः सृष्टिकर्ता ? रतिवल्लभः कः ?
प्रश्नेषु गुप्तानि तदुत्तराणि ॥ ५२ ॥

---

५१. उसका पति बहुत धनी, सुन्दर ('सुभगः'), युवा तथा अन्य स्त्रियों की ओर से विमुख है और पुत्र उसके घर की शोभा बढ़ा रहा है, फिर भी वह सुन्दर दाँतों वाली रमणी सर्वदा रोया करती है, क्यों ?

इस 'क्यों' का उत्तर प्रथम चरण का 'सुभगो' शब्द है । पति शास्त्र की मर्यादा के अनुसार केवल विहित नक्षत्रों में ही रमण करता है अतः कामपिपासा शान्त न होने से वह अतृप्त कामिनी रोती रहती है। सुभग शब्द का अर्थ सुन्दर न करके शुभ (सु) नक्षत्रों (भेषु=नक्षत्रेषु 'नक्षत्रमृक्षं भं तारा', अमरकोष १०४) में ही गमन करनेवाला (गच्छतीति गः) करने से उत्तर स्पष्ट हो जाता है ॥ ५१ ॥

५२. पान में और शरीर में प्रमुख किसे कहा गया है ? शीघ्रगामी कौन है और आकाश का मणि कौन है ? सृष्टिकर्ता कौन है ? रति का पति कौन है ?' इन प्रश्नों के उत्तर इन प्रश्नों में ही गुप्त हैं ।

पान में प्रमुख है कम् (=जलम्), और शरीर में प्रमुख है कम् (=शिरः) शीघ्रगामी है कः (=वायुः) और आकाश का मणि है कः (=सूर्यः) सृष्टिकर्ता है कः (=ब्रह्मा) और रति का पति है कः (=कामदेव) ('मारुते वेधसि ब्रध्ने पुंसि कः कं शिरोऽम्बुनोः' अ. को. १२०५) ('कः' के अन्य अर्थों के लिये वाचस्पत्य, शब्दकल्पद्रुम या आप्टे कृत कोष देखिये ॥ ५२ ॥

के भूषयन्ति स्तनमण्डलानि ? कीदृश्युमा ? चन्द्रमसः कुतः श्रीः ?
किमाह सीता दशकण्ठनीता ? हारामहादेवरतात मातः ॥५३॥
भिन्दन्ति के कुञ्जरकर्णपालिम् ? किमव्ययं वक्ति रते नवोढा ?
सम्बोधनं नुः किमिहौषधिः किम् स्याद्रक्तपित्तस्य ? पदं प्रदेहि ॥५४॥

---

५३. स्तनमण्डलों की शोभा कौन वढ़ाते हैं ? पार्वती किस प्रकार की हैं ? चन्द्रमा की शोभा किससे है ? रावण द्वारा अपहरण करके ले जाई जाती हुई सीता ने क्या कह कर विलाप किया था ? इन चारों प्रश्नों का उत्तर क्रमशः उपर्युक्त श्लोक के चतुर्थ चरण में है । प्रथम प्रश्न का उत्तर है 'हाराः' हार । द्वितीय प्रश्न का उत्तर है 'महादेवरता' । अर्थात् 'शङ्कर में अनुरक्त' । तृतीय प्रश्न का उत्तर है, 'तमातः' अर्थात् 'रात्रि से' । चतुर्थ प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण चतुर्थ चरण ही है, 'हा राम ! हा देवर ! तात ! मातः !' ॥ ५३ ॥

५४. हाथियों के कानों को कौन फाड़ डालते हैं ? नववधू सुरतिकाल में किस अव्यय का उच्चारण करती है ? 'नृ' शब्द का सम्बोधन में क्या रूप बनता है ? रक्तपित्त की औषधि क्या है ? इन चारों प्रश्नों का उत्तर देने के लिये केवल एक ही पद का प्रयोग कीजिये, अर्थात् एक ही पद में चारों प्रश्नों का उत्तर दीजिये ।

उपर्युक्त चारों प्रश्नों का उत्तर 'सिंहाननः' पद है । प्रथम प्रश्न का उत्तर है 'सिंहः' द्वितीय प्रश्न का उत्तर है 'न' (=नहीं) और तृतीय प्रश्न का उत्तर है 'नः' (हे नर !) । चतुर्थ प्रश्न का उत्तर है पूरा 'सिंहाननः' पद अर्थात् 'सिंहास्यः' (=अटरूषः अडूसा) ॥ ५४ ॥

को निर्दग्धस्त्रिपुररिपुणा ? कश्च कर्णस्य हन्ता ?
नद्याः कूलं विघटयतिकः ? कः परस्त्रीरतश्च ?
कः सन्नद्धो भवति समरे ? भूषणं किं कुचानाम् ?
दुस्संगात्किं भवति महतां ? मानपूजापहारः ॥५५॥

---

५५. इस श्लोक में सात प्रश्न पूछे गये हैं और अन्त में सात अक्षरों से घटित एक समस्त पद 'मानपूजापहारः' से उन सब का उत्तर दे दिया गया है। प्रथम प्रश्न 'त्रिपुरारि शङ्कर के द्वारा कौन भस्मसात् किया गया था ?' का उत्तर 'मानपूजापहारः' के पद के प्रथम और अन्तिम अक्षरों को मिला कर पढ़ने से मिल जाता है, 'मारः' (कामदेव)। द्वितीय प्रश्न 'कर्ण को मारने वाला कौन है ?' का उत्तर 'मानपूजापहारः' पद के द्वितीय और अन्तिम अक्षरों को मिला कर पढ़ने से मिल जाता है 'नरः' (अर्जुन)। तृतीय प्रश्न 'नदी' के कूलों को कौन विघटित कर देता है ?' का उत्तर 'मानपूजापहारः' पद के तृतीय और अन्तिम अक्षरों को मिला कर पढ़ने से मिल जाता है 'पूरः' (बाढ़ के पानी का तेज प्रवाह)। चतुर्थ प्रश्न 'दूसरों की स्त्री के साथ कौन व्यक्ति रमण करता हैं ?' का उत्तर 'मानपूजापहारः' पद के चतुर्थ और अन्तिम अक्षरों को मिला कर पढ़ने से मिल जाता है 'जारः'। पञ्चम प्रश्न 'युद्धस्थल में लड़ने के लिये कौन तैयार हो जाता है' का उत्तर 'मानपूजा-पहारः' पद के पञ्चम और अन्तिम अक्षरों को मिलाकर पढ़ने से मिल जाता है 'परः' (=शत्रु)। इसी प्रकार छठे प्रश्न 'स्तनों का आभूषण क्या है' का उत्तर, 'मानपूजापहारः' पद के छठे औंर अन्तिम अक्षरों को मिला कर पढ़ने से मिल जाता है 'हारः'। सप्तम प्रश्न दुर्जनों के संसर्ग में आ जाने पर 'महान् लोगों का क्या होता है' का उत्तर पूरा 'मानपूजापहारः' पद ही है। अर्थात्

पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति, परिपन्थं च तिष्ठति ।
व्रातेन जीवत्यधुना, न वशः पूर्ववत्सनः ॥ ५६ ॥
मधौ मन्दं मन्दं मरुति शिशिरे वाति रुचिरे
कुलस्त्रीभिः कृष्णे विहरति तथा वृष्णिनिकरे ।
उषा योषा तोषाद्वदनमनिरुद्धस्य मिषतः
पुरः पत्युः कामाच्छ्वशुरमियमालिङ्गति सती ॥५७॥

दुर्जनों की संगति में पड़ जाने पर बड़े लोगों के सम्मान-सत्कार की हानि होती है क्योंकि लोग उनका सत्कार और सम्मान करना छोड़ देते हैं ॥ ५५ ॥

५६. वह अब भी पहले की ही भाँति (सः अधुना पूर्ववत) पक्षियों, मछलियों तथा पशुओं का शिकार करता है (पक्षि-मत्स्य-मृगान् हन्ति), चोर-लुटेरों के कार्य करता है (परिपन्थं च तिष्ठति) तथा मजदूरी कर के जीविकोपार्जन करता है (व्रातेन जीवति) । उस पर हम लोगों का कोई वश नहीं चलता अर्थात् वह हम लोगों के वश में नहीं है (नः वशः न) ।

यह श्लोक पाणिनीय अष्टाध्यायी के छह सूत्रों 'पक्षिमत्स्यमृगान् हन्ति' ४ । ४ । ३५, 'परिपन्थं च तिष्ठति' ४ । ४ । ३६, 'व्रातेन जीवति' ५ । २ । २१, 'अधुना' ५ । ३ । १७, 'न वशः' ६ । १ । २० और 'पूर्ववत्सनः' १ । ३ । ६२ का सङ्कलन है, जिसमें इन सूत्रों का अर्थ इस प्रकार किया गया है कि उनमें एकवाक्यता आ गई है ॥ ५६ ॥

५७. चैत्र मास है । शीतल, मन्द, सुगन्धित समीर धीरे धीरे बह रहा है । भगवान् श्रीकृष्ण और यादव गोपाङ्गनाओं के साथ विहार कर रहे हैं । देश-काल की परिस्थितियों से प्रभावित हो पतिव्रता उषा अपने पति अनिरुद्ध को सामने पाकर कामाभिभूत हो जाती है (काम—जो उसके पति अनिरुद्ध का पिता अतः उसका श्वशुर है—का आलिङ्गन करने लगती है) ।

यहाँ 'उषा का श्वशुर को आलिङ्गन करना' कामविह्वल हो जाना मात्र है। श्वशुर का अर्थ अनिरुद्ध का पिता कामदेव और पति का अर्थ अनिरुद्ध ('अनिरुद्ध उषापतिः' अमरकोष २९) न कर, 'पतिव्रता उषा पति के सामने कामासक्त हो श्वशुर का आलिङ्गन करती है' इतना ही अर्थ करने से, पतिव्रता का श्वशुर का आलिङ्गन करना असंगत प्रतीत होता है, यही कूट का सौन्दर्य है ॥ ५७ ॥

कल्याणी यस्य माता, रुचिरतनुरुमाशङ्करो यस्य तातः,
भ्राता गीर्वाणवाणीकविवरगिरिजाशङ्करः पूर्वजातः ।
मिश्रः केदारनाथः स गुरुजनकृपोपात्तविद्योऽनवद्यम्
हृद्यं पद्यानुवादं व्यलिखदिह गिरा सज्जनानां सटीकम् ॥

वेदाक्ष्याकाशनेत्रेऽब्दे वैक्रमे, मासि कार्तिके ।
कृता विद्वद्विनोदाय टीकेयं पूर्णतामगात् ॥

इति श्रीकाशिकहिन्दुविश्वविद्यालयीयभारतीमहाविद्यालये
भारतीयदर्शनधर्मशास्त्राध्यापकेन
श्रीकेदारनाथमिश्रेण
विरचिता गूढार्थप्रकाशिकाख्या
व्युत्पत्तिप्रदर्शनव्याख्या
समाप्ता ।
शुभमस्तु :—

